UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182420
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.6/B29N Accession No. G.H. 1353

Author बर्थ्वाल, चंद्रकुँवर।

Title नंदिनी। 1942

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक
एजूकेशनल पब्लिशिंग कम्पनी
चारबाग, लखनऊ.

मूल्य
साधारण सामान्य संस्करण सवा रुपया
साधारण विशेष संस्करण ढाई रुपया

मुद्रकः—
भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स
लाटूशरोड, लखनऊ

सूची

(१) प्रवचन — ४

(२) चन्द्रकुंवर बर्त्वाल — ५—१२

(३) नंदिनी — १—६७

(४) पदों की सूची — ६९—७६

प्रवचन

'नंदनी' गीत-कथा है, जिस में भर्तृहरि के शतक की भाँति तीन खंड हैं। कालिदास के मेघदूत की तरह भावनाओं के सौन्दर्य के पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध हैं। किन्तु इस से भी अधिक बात यह है कि इस में कवि के जीवन के आठ वर्षों (१९३८-४५ ई०) का सच्चा काव्यमय इतिहास है।

नंदनी का पहिला भाग उस समय (१९३८-३९ ई) लिखा गया था जब यौवन-सुलभ कामनाएँ कवि के हृदय में चक्कर मार रही थीं।

द्वितीय भाग उस समय (१९४०-४२ ई०) लिखा गया था जब व्यथाओं-यातनाओं के चंगुल में कवि फँस गया था और जब उस के परिवार में अनेक शोक-जनक घटनाएँ घटीं।

तृतीय भाग उस समय लिखा गया था जब कि कवि, जीवन से वीतराग हो गया था; जब न तो उसे व्यथाओं-यातनाओं से मुक्त होने की चाह रह गई थी और न तो मृत्यु से डर।

नंदिनी का आरंभ वैशाख १९९५ विक्रमीय में हुआ और समाप्ति कातिक २००२ विक्रमीय में हुई।

चेतना के संवद्ध होने पर भी नंदिनी के प्रत्येक पद को स्वतंत्र कविता समझना ही ठीक होगा।

शंभुप्रसाद बहुगुना

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

हिन्दी-साहित्य में अनेक कवि ऐसे हुए हैं जो एकान्त रूप से साहित्य-सेवा किया करते हैं। उनकी इस साधना में जग के सुख-दुख, उच्छ्‌वास-ह्रास सभी कुछ होते हैं, किन्तु सरल निश्छल सत्यता के साथ। वे हृदय के भावों को छिपाते नहीं हैं। उनके भाव, सौम्य-स्निग्ध होते हैं, जो अपनी मृदुलता में हृदय पर प्रभाव छोड़ते हैं। उग्रता भी उनमें उग्र नहीं रह जाती। कुछ इसी ढंग के विलक्षण प्रतिभा के कवि थे चन्द्रकुँवर बर्त्वाल, जिनकी साहित्यिक कृतियाँ एक दिन विश्व के सम्मुख भारत का मस्तक ऊँचा करने का साधन बन कर रहेंगी। वेदना यही है, उस दिन के आने से पहिले ही हम अपने इस प्राण-धन कवि के पार्थिव शरीर से वञ्चित हो गये हैं। किन्तु उसका अमर रूप उसके साहित्य के रूप में पृथ्वी पर युग-युग तक रहने के लिए यहीं रह गया है। इसी आश्वासन से व्यथा कुछ शान्त हो पाती है।

चन्द्रकुँवर, विराट धर्म के हिरण्यगर्भ कवि हैं। करुणा-प्रेरित सौन्दर्य से उनकी कविताएँ तथा जीवन की भावनाएँ सराबोर हैं। माता की करुणा प्रेयसी की सुन्दरता के दर्शन वे गौतम की उदार ममता में सहज ही कर पाये हैं। इसलिये घने अन्धकार के वातावरण में भी उनके हृदय की आत्म-ज्योति एक रस रही है।

अपनी रचनाओं में नैराश्य भावनाओं को प्रश्रय देने पर भी वे दिव्य आशा के पुरुषार्थी कवि रहे हैं। उनके वर्षा गीतों की सरसता प्रेम-गीतों की माधुरी और सौन्दर्य-गीतों की स्निग्धता के मूल में सूर्य-लोक की कभी न बुझने वाली ज्योति है।

समाज की रूढ़ि-ग्रस्त मान्यताओं के बीच भी उन्होंने अपनी काव्य मन्दाकिनी के लिए स्वयं पथ ढूँढा है। शान्ति और संयम के साथ, युग की शक्ति क्षीण करते हुए वे आगे बढ़ते हैं। विराट की मान्यता के सम्मुख नत-मस्तक होकर भी उन्होंने अपने आत्म-तेज को प्रस्फुटित होने दिया है। इसी से वे भाग्य की उपेक्षा न करते हुए भी भाग्य-वादी नहीं हैं। अकर्मण्यता के घेरे में फिर कर भी पुरुषार्थी रहे हैं, निराशाओं और व्यथाओं के बीच आ जाने पर भी संयमी और उदार वृत्ति के रहे हैं।

प्राचीन के उपयोगी अंशों को, अपने ढंग से, युग के काम के बनाकर, भविष्य के हित को ध्यान में रखकर, उन्होंने अपनाया। 'जयगान', 'नवयुग', 'नवप्रभात', 'नवीन युग', 'अभिशाप', 'विवाहिता', 'क्यों न कहा', 'काफल पाक्कू', 'जीतू', 'आकाश', 'रावण-दहन', 'काँटा', 'बाँस का लट्टू', 'आँधी', 'मँकौले के खिलौने', 'पूजा', 'चूहा-बिल्ली', 'वह लौट न आई', 'राम नाम की गोलियाँ', 'पुण्य-स्नान', 'नृत्य-जातक', आदि कविताएँ इसके प्रमाण हैं। रूढ़ियाँ चाहे किसी भी क्षेत्र में क्यों न हों, अज्ञान फैला कर मनुष्य को संकीर्ण और असहिष्णु बना देती हैं।

विकास, स्वतन्त्र चिन्तन की गोद में पलता है। किन्तु स्वतन्त्र चिन्तन का अर्थ उच्छृङ्खलता नहीं है। प्रेम के क्षेत्र में उच्छृङ्खलता और स्वतन्त्र चिन्तन के लिए सबसे अधिक स्थान है। क्योंकि प्रेम, मानव-हृदय की स्वाभाविक नैसर्गिक वृत्ति है, जो किसी भी मानव-कृत बन्धन में सीमित नहीं रह सकती;

ठीक उसी तरह जिस तरह रूप नहीं रह सकता। किन्तु बुद्धि उसे समाज-व्यवस्था के विवेकशील नियन्त्रण में रख कर ही सन्तुष्ट होती है।

व्यक्ति-वादी युग में समाज की अवहेलना करके मनुष्य अपनी मनमानी करना चाहता है। किन्तु हृदय की सहज स्वाभाविक वृत्तियों की मान्यता को पूर्ण रूप से मानते हुए भी प्रेम का विकास ऐसे रूप में चन्द्रकुँवर नहीं चाहते, जिसमें होने से वह सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देने वाला विद्रोही हो जाता है। 'विवाहिता', में यह कहते हुए भी—

> हे ईश्वर ! क्षमा करो स्वामी, तुम मुझ को
> मैं किसी और के चिन्तन में
> रहता विलीन मन ही मन में
> मैं पाप कर रही, ज्ञात हाय, यह मुझ को
> पर कैसे भूलूँ, मैं उस को, जीवन में,
> शैशव में नित समीप रह कर
> मुझ को उतने सुख दे कर,
> जो समा गया मेरे नयनों में, मन में।

उच्छृङ्खलता उत्पन्न कर देने वाली स्थिति की ओर वे, नहीं गये हैं, वरन् उन्होंने संयम ही को प्रधानता दी है। 'जीवन-सहचर' में, वृद्धावस्था में प्रेम को 'शान्त जरा के सर्व समर्पण' की भूमि तक वे ले गये हैं। विवाहिता के द्वारा प्रश्न किये जाने पर उन्होंने प्रेमी-हृदय से यही कहलवाया है— 'व्यक्त मैं यदि प्रेम करता, तुम्हें जीवन रुदन होता।' और 'अभिशाप' में प्रेम और विवेक, हृदय और बुद्धि, तथा व्यक्ति और समाज का संघर्ष अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा है। हृदय का कुररी क्रन्दन, दिगन्त में व्याप्त हो रहा है—

ये बनों के मुक्त पंछी, मानवों से हैं सुखी
ये प्रणय करके सुखी हैं, हम प्रणय करके दुखी।
तरु करा देते मिलन इन का मनोहर पल्लवों में,
और हम होते तिरस्कृत इस जगत के मानवों में।

किन्तु कवि का विवेक, जगत् की व्यवस्था को जीवनोपयोगी देखकर हृदय के क्रन्दन को शान्ति में परिणित कर देता है—

पर जगत बलवान हो तुम, क्षुद्र प्रेमी प्राण हैं,
तुम सुखी हो रो रहे पर त्रस्त प्रेमी प्राण हैं।

'नृत्य जातक' में हंस-सुता के विवाह में भी इस विवेक ने कवि का साथ दिया है।

प्रेम की परिष्कृत परिणिति, प्रकृति की शीतल गोद में, गीतों के सहारे की जा सकती है। इस लिये प्रेमिका के प्रति प्रेम को अधिक उज्ज्वल, अधिक तीव्र तथा पावन बनाने के लिए, कवि ने प्रेमिका के दर्शन, विराट प्रकृति, मानवता और कविता तीनों में किए हैं। मानवता, कविता और प्रकृति, की सुन्दरता को कवि ने अपनी प्रेम-भावना की सरसता प्रदान की है। और प्रेमिका की प्रतिच्छवि की छाया से अपने काव्य को प्राणवान बनाया है। 'वही करूँगा' 'मुझे चाहिए' 'खंडहर', 'रात', 'शहनाई', 'खीली-ग्राम', और 'माधुरी' तथा 'नन्दिनी' इस प्रकार की दिव्य कविताएँ हैं।

जग के सुख-दुख को अपने में लीन कर देने की असीम शक्ति प्रकृति में है, इस तथ्य की अनुभूति को कवि ने 'आकाश', 'रात', प्रभात' आदि में कविता का विषय बनाया है। इन कविताओं में कवि ऊँचे से ऊँचे उठा है। इनमें करुणा और सौन्दर्य, प्रेम और विवेक, जीवन और दर्शन, एक साथ ही विराट

रूप में विद्यमान हैं। विश्व के अंतर्गत तथा उसके ऊपर नीचे जितने जीवन-व्यापार हो सकते हैं, उन तक कवि की पहुँच रही है। चींटी से लेकर आकाश के एक तारे और जन्म से लेकर मृत्यु के पश्चात् के लोकों के दृश्यों को भी कवि अनुभूति पथ में ले आने में सफल हुआ है। शैलियों की विविधता, शब्दों के असीम सागरों और अनुभूतियों के अथाह प्रवाहों में कवि ने अपने प्राणों की तन्मयता को एक किया है। इसी से चन्द्रकुँवर, हिमवन्त के होते हुए भी हिमवंत भर के नहीं हैं। हिन्दी के होते हुए भी हिन्दी भर के ही नहीं हैं, भारत के होते हुए भी भारत ही के नहीं हैं। और इस जगत के होते हुए भी इसी भर विश्व तक सीमित नहीं रहे।

चन्द्रकुँवर ने निबंध, कहानियाँ, एकांकी, आलोचनाएँ, गद्य-काव्य, यात्रा-विवरण, विवेचनाएँ आदि सभी प्रकार की चीज़ें लिखी हैं। इन सब का अपना अलग-अलग महत्व है। किन्तु मूल रूप में वे मातृ-भाषा के महान् कवि के रूप में वरदान स्वरूप ही इस पृथ्वी पर देव पुत्र के रूप में आये थे और अविरल रूप से अपनी काव्य मन्दाकिनी बहा कर देव लोक को चले गये। वे कितने महान् थे, इसका पता तब चल सकेगा जब उनकी सभी रचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित होकर जनता के सामने आ जावेंगी। 'हिमवंत का एक कवि' को देख कर ही (जो कुछ वर्ष पहले परिचय भर करा देने के लिए लिखा गया था) काव्य और जीवन के दिव्य पारखियों ने चन्द्रकुँवर को 'अपूर्व वरदान' 'मातृ भाषा का महान् कवि' 'चमत्कार' आदि रूपों में स्वीकार कर लिया : और चन्द्रकुँवर के 'काफल पाक्कू' को हिन्दी का सर्व श्रेष्ठ गीति के रूप में पहचान कर 'प्रेमी अभिनन्दन-ग्रंथ' में उसे स्थान दिया। और हर प्रकार से वह प्रेरणा दी जिसके कारण चन्द्रकुँवर की कविताओं का जल्दी ही प्रकाशन में लाने का अवसर आने को है। चन्द्रकुँवर की पहली कविता पुस्तक नन्दिनी है, जो श्री राजराजेश्वर जी भार्गव, भार्गव-प्रिंटिंग प्रेस के कर्मचारियों तथा डाक्टर वासुदेव

शरण जी अग्रवाल' श्री कुसुम बेन आदि सुहृदों के सहयोग से प्रकाशित हो पाई है। गद्य की एक पुस्तक 'नागिनी' के नाम से एजुकेशनल पब्लिशिंग कम्पनी चारबाग़ लखनऊ से छप चुकी है।

चन्द्रकुँवर का जन्म, धार के ख्यात नाम जगदेव पँवार के वंशज ठाकुर भूपालसिंह जी बर्त्वाल के घर में, सिद्धराज जयसिंह सोलङ्की से सम्बन्धित भंडारी वंशजा श्री जानकी देवी के गर्भ से वृहस्पतिवार भाद्रपद पाँच, मिथुन राशि, आर्द्रा प्रथम चरण में, सम्वत् उन्नीस सौ-छहत्तर विक्रमीय को मालकोटी गाँव, तल्ला नागपुर, जिला गढ़वाल में हुआ था। नागनाथ, पौड़ी, देहरादून, प्रयाग, लखनऊ में कवि ने शिक्षा पाई। अगस्त्यमुनी स्कूल में प्रधानाध्यापक की हैसियत से दस महीने काम किया। अगस्त्य मुनी में कवि को अनेक प्रकार की कठिनाइयों के बीच अपना जीवन बिताना पड़ा। इस जीवन की एक झलक कवि ने इस प्रकार दी है—

वह पुराना साथ छूटा

काल ने मुझ को अहा! इस तरह लूटा
अब जुटे कैसे अनोखे साथ वाले
कर्म काले, और जिन के हृदय काले
मांस लोलुप गिद्ध-से, मेरे हृदय पर
जो झपटते, कर प्रसारित स्वार्थ के पर
भूँकते मेरे सुयश पर, नाम को
गालियों से काटते बिगड़ैल हो!
वह पुराना साथ, हाय कहाँ गया!
जब पुराने काव्य ग्रन्थों में नया

सौख्य थे हम ढूँढ़ते, जब प्रेम से
बीतते थे दिन, कुशल औ' क्षेम से;
पास थे तुम शम्भु, विक्रम पास था,
हृदय मेरा तब कभी न उदास था ;
और क्या हूँ अब ? न कुछ पूछो मुझे,
तंग मैं आगया इस हरदत्त से।

यह हरदत्त नाम का व्यक्ति स्कूल का 'रहस्य', मंत्री (सेक्रेटरी) था, जिस ने कवि तथा दूसरे अध्यापकों के वेतन तथा जनता द्वारा स्कूल के लिए दिये गये धन के बहुत से अंश को हज़म भर करके ही संतोष नहीं लिया, बल्कि तरह-तरह से कवि को बदनाम करने में भी कोई कोर कसर नहीं रक्खी। इस प्रकार की अनेक कठिनाइयों के बीच भी अपनी काव्य तथा जीवन सरिता को बहाते हुए, मंदाकिनी-तीर-स्थित पँवालिया (पाँचालपुर), कालीपार, जिला गढ़वाल में अपनी अट्ठाइस वर्ष, चौबीस दिन की इह लौकिक यात्रा, रविवार उनतीस भादौं, दो हजार चार विक्रमीय को समाप्त की।

आज नन्दिनी के प्रकाशित होते समय, कवि की ये पंक्तियाँ कितनी सत्य सिद्ध हो रही हैं—

"मैं इस बात की कभी परवाह नहीं करता कि कोई मुझे प्यार करता है या घृणा की दृष्टि से देखता है। संसार के रास्ते पर मैं अकेला चलना चाहता हूँ, अकेला चला भी हूँ। अकेले में मेरी शक्ति जाग्रत रहती है। साथी होने से मुझे अपने पर इतमीनान नहीं होता। और शायद संसार में मुझे किसी वस्तु से मतलब भी नहीं रहा—एक कविता को छोड़कर।"

"मुझे सारा संसार भूल जावे, संसार के सब लोग घृणा करने लग जावें, किन्तु यदि कविता मुझे न भुला दे तो मैं कुछ भी खोया हुआ नहीं मानूँगा

और मुझे तनिक भी दुख नहीं होगा। हृदय की उसी एकान्त इच्छा को पूरी तरह से पाने के लिए मैं जान बूझकर कठिन दुख के रास्ते पर चल रहा हूँ। हो सकता है कि अकाल मृत्यु मेरी कामनाओं को कुचल दे; हो सकता है कि जब सिद्धि मुझे मिले उस समय उसे उपभोग करने की सामर्थ्य मेरे शरीर में न हो, फिर भी मुझे इस बात का सन्तोष रहेगा कि जीवन के प्रभात-काल में जिस देवी के चरणों पर मैंने अपना सिर रक्खा था उसकी मैंने सदा पूजा की, उस को मैंने सदा प्यार किया। मुझे इस बात का दुख नहीं है कि उस के प्रसिद्ध उपासकों में मेरी गिनती नहीं हुई; क्योंकि मुझे समय नहीं मिला। और प्रेम तो उसी का नाम है जो असह्य कष्ट सहने पर भी अपने स्नेह पात्र को धन्यवाद ही दे। किशोरावस्था में तुमने मुझे उस मन्दिर तक जाने में मदद दी, जहाँ आँखों में आँसू भर वह देवकन्या रहती थी। इस बात को न तो मैं भूला हूँ और न तो कभी भूल सकूँगा।"[१]

शम्भुप्रसाद बहुगुना

१—आठ सितम्बर सन् १९४२ ई०

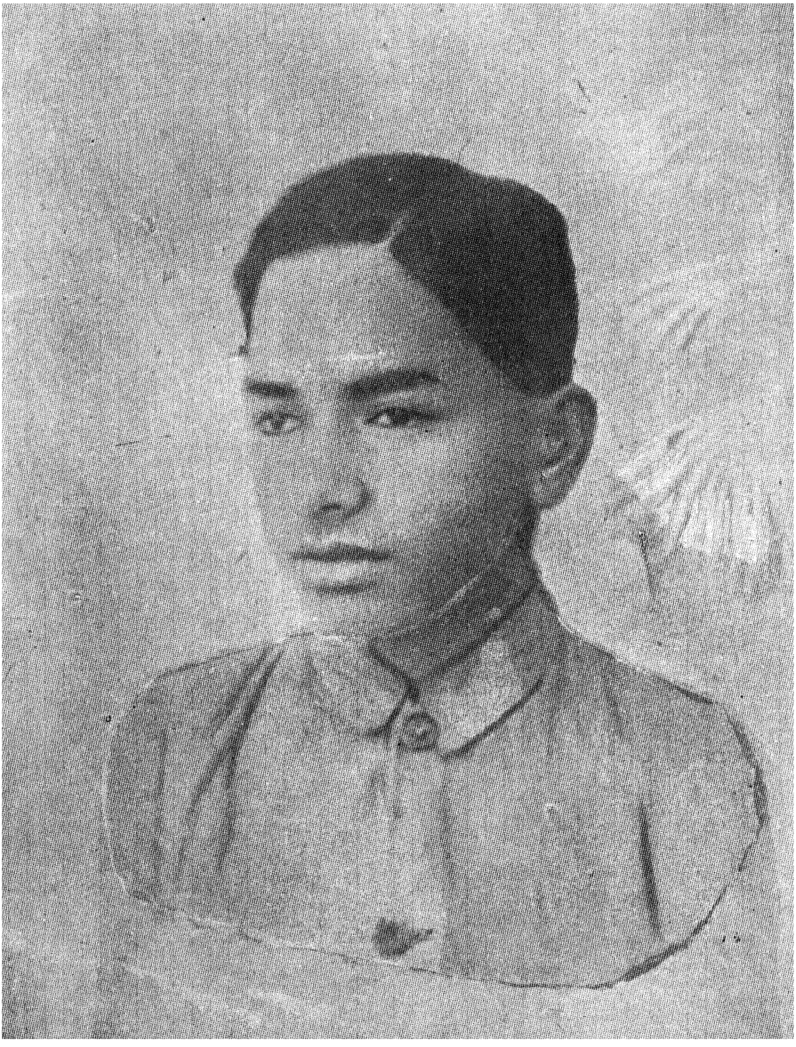

'काफल पाक्कू' कवि

श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल कब हिन्दी-संसार में आए और कब चले गए इस का किसी को पता न लगा। पर उनके रूप में हिन्दी-संसार ने अपना सबसे बड़ा गीति-काव्य रचयिता पाया और खो दिया। इस प्रकार की धारणा उनकी कविताओं को देखने से मन में बनती है। चन्द्रकुँवर के काव्य को भूमिका लेखक के निर्बल शब्दों में मेरुदंड की आवश्यकता नहीं, वह स्वयं अपने तेज से तेजस्वी है। हिमालय में निश्चित समय पर गाने वाले काफल पाक्कू पक्षी के गान की तरह चन्द्रकुँवर के सुरीले मुक्तक मन और आत्मा को काव्य-सौन्दर्य के एक नये लोक में उठा देते हैं और वह आनंद अंत में इस करुणा और कसक के साथ समाप्त हो जाता है कि इस प्रकार के सौन्दर्य का गान करने वाला कवि इतनी जल्दी हम से विलग हो गया। उसकी वाणी के परिपाक से हमारी भाषा और भी धन्य होती पर ऐसा न हो सका। जो कुछ भी अट्ठाईस वर्ष की आयु में उनसे हमें मिल सका, वह ही अद्भुत है। उनकी लिखी हुई कविताओं की संख्या लगभग सात सौ तक है और शुद्ध मुक्तक के आनंद की दृष्टि से कितनी ही इतनी सुन्दर हैं कि वे निखिल हिन्दी-संसार की संपत्ति कही जा सकती हैं।

कलात्मक सौन्दर्य और आनन्द की कसौटी पर पूरा उतरने वाले मुक्तक की रचना बहुत ही कठिन है। प्रबंध काव्य पृथ्वी पर पैर रख कर चलता है, किन्तु

मुक्तक पृथ्वी और आकाश दोनों में एक साथ ही अपने पंख फैलाता है। पृथ्वी का साथ न छोड़ते हुए भी वह आकाश में ऊँची से ऊँची उड़ान भरने का अभ्यासी है। आकाश की निर्मल धूप में अपने आप को विलीन करने की अभिलाषा से ऊपर उठ कर भी वह पृथ्वी के साथ अपना सम्बन्ध बनाए रखता है। शुद्ध मुक्तक की यही सब से बड़ी परख है कि न तो उसमें पार्थिव अंश की अधिक गंध हो और न आकाश की अस्तित्वहीन तरलता। इस प्रकार की सफल कविता अत्यन्त कठिन और विरल होती है। श्री चन्द्रकुँवर का मुक्तक इस प्रकार की विलक्षण रस-प्रतीति तक हमें ले जाता है। वह ऊपर से वेदनामय जान पड़ता है; पर उसकी यह करुणा कहीं भी जीवन के आनंदी निर्भर का निराकरण करती हुई नहीं जान पड़ती। करुण काव्य के इस गुण की भरपूर प्रतीति हमें कालिदास के मेघदूत में प्राप्त होती है। चन्द्रकुँवर की कविता में दार्शनिक मतवाद ढूँढने का प्रयास इस कविता के साथ अन्याय करना होगा, मुक्तक कविता तो आनंद को झड़ी है, इसी में उसकी सफलता की इतिश्री जाननी चाहिए।

चन्द्रकुँवर हिमवन्त की फूटती हुई जलधाराओं और ऊँची उठती हुई चोटियों के बीच कहीं उत्पन्न हुए। केदारनाथ के पास पँवालिया उनका ग्राम था जिसे एक मुक्तक लिखकर उन्होंने अमर किया है। प्राचीन भारतीय इतिहास में एम. ए. की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे लखनऊ विश्वविद्यालय में रहे, पर विपरीत स्वास्थ्य ने उन्हें फिर हिमालय के कोटर में ले जाकर, बन्द कर दिया। सात वर्षों तक रोगों से युद्ध करते करते चौदह सितम्बर उन्नीस सौ सैंतालीस को गाते हुए उनका अन्त होगया।

हिमालय के उत्संग में भरा हुआ जो असाधारण कल्लोल और कलरव है, साथ ही उसका जो धीर मौन है, उन दोनों से चन्द्रकुँवर का हृदय पूर्ण था। हिन्दी-जगत् में बाहर आकर वे विज्ञापन-यश की खोज में न निकल सके, यह

उनकी कविता के लिए हितकर ही हुआ। उनके मनोभावों के रुके हुए सेतु इधर-उधर न बह कर कविता में ही फूट निकले जिससे उनकी भाषा और भावों में एक अपूर्व वेग और शक्ति आ गई। ज्ञात होता है कि अंतरिक्ष में रुके हुए बाँध टूट कर पृथ्वी की ओर वेग से बह रहे हैं। अर्थ और छन्दों पर उनका असामान्य अधिकार था। जैसा कि प्रतिभासंपन्न कवि में होना ही चाहिए। हमारी सम्मति में श्री बर्त्वाल जी की कविताओं का संग्रह ही स्वयं उनका सबसे अच्छा परिचय होगा। अपनी कविताओं को अपने जीवन काल में प्रकाशित रूप में देखने की या तो उनमें उत्सुकता नहीं हुई या गिरते हुए स्वास्थ्य ने उनका साथ नहीं दिया। अगस्त्यमुनि की रेती के एक छोटे से स्कूल में अध्यापक के पद पर विजड़ित होजाने के कारण उन्होंने हिन्दी-संसार को अपने लिए अगम्य समझ लिया था और समस्त प्रवृत्तियों को अपने आप में समेट कर काव्य-देवी के चरणों में अर्पण करते हुए उनका जीवन शेष हो गया। इसके साथ परितोष की बात इतनी हुई कि जो कुछ वे लिखते थे वह एक सुहृदय मित्र के पास सुरक्षित होता जाता था। ये मित्र श्री शंभु प्रसाद जी बहुगुणा थे जिन्होंने "हिमवन्त का एक कवि[1]" नामक एक छोटी पुस्तक में आज से चार वर्ष पूर्व श्री चन्द्रकुँवर जी के काव्य का संक्षिप्त परिचय लिखा था। उसमें उद्धृत अवतरण इतने सुन्दर हैं कि वे मन पर निश्चय रूप से कवि की प्रतिभा की अमिट छाप लगा देते हैं।

'नंदिनी' श्रीचन्द्रकुँवर जी की उस मानसिक पृष्ठभूमि का परिचय देती है जिसमें वे अस्वास्थ्य से युद्ध करते हुए अपने जीवन के पिछले कई वर्षों में पहुँच गये थे। यह वही स्थिति थी जिसमें मृत्यु एक निश्चित अवसान-लीला की भाँति सामने दिखाई पड़ती थी। फिर भी जीवन का आनंद मृत्यु की उस काली छाया से अपनी रक्षा करने के लिए बराबर

१—प्राप्ति स्थान – शंभुप्रसाद बहुगुणा आर. टी. कॉलेज लखनऊ।

संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। 'नंदिनी' की एक प्रति उन्होंने स्वयं अपने हाथ से लिखकर श्रीयशपाल जी के पास भेजी थी। सत्ताईस जनवरी उन्नीस सौ सैंतालीस के पत्र में उन्होंने लिखा था—"अत्यंत शोक है कि मैं मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ हूँ और बीस-पच्चीस दिन अधिक से अधिक बचा रहूँगा।...सुबह को एक दो घंटे बिस्तर से मैं उठ सकता हूँ और इधर उधर अस्त-व्यस्त पड़ी कविताओं को एक कापी पर लिखने की कोशिश करता हूं। बीस-पचीस दिनों में जितना लिख पाऊँगा आप के पास भेज दूंगा।" 'यौवन के आँसू' के मुख पृष्ठ पर उन्होंने लिखा था—

"प्रस्तुत पुस्तिका मेरे आठ वर्षों के जीवन का इतिहास है। प्रथम खंड उस समय लिखा गया था जब यौवन-सुलभ कामनाएँ हृदय में चक्कर मार रहीं थीं। द्वितीय खंड उस समय लिखा गया था जब मैं रोगों के चंगुल में फँस गया था और मेरे परिवार में अनेक शोकजनक घटनाएँ घटीं। तृतीय खंड उस समय लिखा गया जब मैं एकाएक नास्तिक से आस्तिक हो गया और ईश्वर पर दृढ़ विश्वास मेरे जीवन का श्वास प्रश्वास हो गया।

अन्त में मैं उन अनन्त शोकों और भीषण दुःखों को नमस्कार करता हूँ जो मनुष्य को ईश्वर की सत्ता का ज्ञान कराते हैं, मरने से पहले जिसे ईश्वर की महत्ता का ज्ञान एक पल के लिये भी नहीं हुआ, क्या उसका जन्म लेना व्यर्थ नहीं हुआ?

ॐ शांति! शांति!! शांति!!!"

इस प्रकार नंदिनी की सूत्र-गाथा उनके जीवन की अंतर्निहित करुणा के साथ संबद्ध है। यौवन सुलभ कामनाओं के समय कवि के गान का स्वर था—

"आज अतिथि मेरे यौवन का यदि आ जाता,
कितना होकर तृप्त यहाँ से फिर वह जाता!

किन्तु वह अभिलषित प्रेम-पुरी कवि के लिये सुलभ न हुई। विषाद की छाया ने उसके जीवन को ग्रस लिया --

"आएगा वसंत पर मैं न हरा अब हूँगा।
गरजेगा सावन मैं उसके स्वर न सुनूँगा।"

अंत में दुख का जीवन ही कवि का सहायक होता है --

दुख ने ही मुझको प्रकाश का देश दिखाया।
सुख ने मुझको हलका-सा ही राग सुनाया।"

मन की इस स्थिति में सौभाग्य से कवि की अनुभूति चिरशांति और प्रसन्नता प्राप्त करती है। कवि को अपना जीवन और गीत दोनों सार्थक लगने लगते हैं। जीवन के विधान में प्रियतम गीतों से भी एक दिन विदा लेना आवश्यक है—

"प्यारे गीत, बहुत दिन रहे साथ हम जग में,
रोते-गाते हुए बढ़े, हम जीवन-मग में;
आज समाप्ति हुई पथ की, अब मुझे विदा दे
लौटो तुम, जाने दो दूर मुझे जीवन से;
रह अभिन्न होता हूँ तुम से आज विलग मैं,
मेरे गीत, बहुत दिन रहे साथ हम जग में।"
तुम इस पथ से लौट पुनः पृथ्वी में जाओ,
तुम जग के अधरों पर मेरे स्वर ले जाओ,
मैं जाता हूँ ईश्वर की प्रशान्ति पाने को,
तुम लौटो पृथ्वी पर सुख पूर्वक गाने को;
तुम जाओ, जग को रहने के योग्य बनाओ,
तुम सबके अधरों पर मेरे स्वर ले जाओ।"

(कविता के प्रति)

श्री चन्द्रकुँवर जी की कविताओं को पढ़ने से ऐसी प्रतीति होती है कि वे दुख-वादी कवि नहीं थे—

"मैं मर जाऊँगा, पर मेरे जीवन का आनंद नहीं ;
झर जाएँगे पत्र-कुसुम तरु, पर मधु प्राण वसंत नहीं !
सच है घन तम में खो जाते स्रोत सुनहले दिन के,
पर प्राची से झरने वाली आशा का तो अंत नहीं ! ?"

जीवन की दुर्धर्ष शक्तिमत्ता के संबंध में "यशस्वियों की पृथ्वी" शीर्षक कविता के गूँजते हुए ओजस्वी शब्द इसका प्रमाण देते हैं—

"यह यशस्वियों की पृथ्वी है, यह वीरों की
कर्म भूमि है। इन दुर्गम शिखरों के ऊपर
कौन बास कर सकता है, जिसने अपने को
हो न देवता बना लिया ! बज्रों से हिलते
इन मेघों को चीर सूर्य्य की दीप्त कान्ति को
कौन देख सकता है, जिसके दृढ़ पंखों में
हो न बाज की शक्ति ? अरे इस अंधकार से
और मरण में ढकी हुई पृथ्वी में अपने
पथ को, कौन देख सकता, जिसके नयनों में
हो न खेलता आत्मा का प्रकाश चिर उज्ज्वल ?
जीवन के छिद्रों-छिद्रों से फूट आ रहे
सघन निराश के कलुषित प्रवाह, प्राणों के
दीपक को विलीन कर देने अंधकार में।
इन उत्पातों की बाढ़ों से अपने उर की
ज्योति बचाए रख सकता जो, उसी रत्न को
धारण करती है पृथ्वी मस्तक पर अपने।

उनकी "मानव" शीर्षक कविता पढ़कर टेनिसन क'लोटस ईटर्स' नाम की उस कविता का स्मरण आता है जिसमें एक ओर जीवन में अकर्मण्यता का आश्रय लेकर पड़े-पड़े मधु चखने वाले व्यक्तियों और दूसरी ओर संघर्षमय जीवन के लिए व्याकुल कर्मण्य वीरों की विपरीत मनोवृत्तियों की तुलना की गई है। मानव होने के नाते ही संघर्ष और उद्यम हम में से प्रत्येक की बाँट में आ गया है। एक छोटी-सी कविता में इस उदात्त भाव को सुन्दर काव्यमय ढंग से व्यक्त किया गया है—

"कहीं शान्ति से मुझे न रहने देगा मानव!
दूर बनों में सरिताओं के शीत-तटों पर
सूनी छायाओं के नीचे लेट मनोहर
विहगों के स्वर मुझे न सुनने देगा मानव!
यौवन के प्रभात में पुष्पों के उपवन में
खड़ी किसी मृदु मुखी मृगी के प्रिय चिन्तन में
मुझे नयन भर खड़ा न रहने देगा मानव!"
शोषित-पीड़ित अत्याचार सहस्र सहन कर
चला जा रहा अविराम विजय के पथ पर
बज्रों की भूकम्पों की, उल्कापातों की,
रौद्र शक्तियों से कठोर रण कर, पग-पग पर,
ऐसे समय घाटियों में लेटे जीवन की
अकर्मण्यता मुझे न सहने देगा मानव।"

विगत महायुद्ध के समय मचे हुए भीषण संहार से व्यथित कवि ने अंतर्लीन होकर प्रश्न पूछा था कि हे रुद्र, तुम यह प्रलय-साज किस अनाचार को दूर करने के लिये सजा रहे हो। उनका वह टीसता हुआ प्रश्न हमारे अपने ही देश की आज-कल की परिस्थिति में और भी सार्थक हो उठा है—

"हे विभीषण, तुम जल में, स्थल में, महाकाश में
लगे हुए हो अविश्रान्त, किसके विनाश में ?
अनाचार वह कौन, नाश जिसका करने को
प्रलय-साज से सजा रुद्र तुमने अपने को ?
बरस रहीं निर्मम ज्वालाएँ नभ से, जिनके
आघातों से जलते नगर-ग्राम तिनकों-से।
मरते हैं निरीह नर-नारी पृथ्वी भर में
हा हा कार उठ रहा निर्दय अम्बर में।"

× × ×

"कठिन दासता से विमुक्त मनुजों के जीवन,
रोग-शोक दारिद्र्य हीन सुन्दरतम यौवन,
घृणा द्वेष से हीन प्रेम के भाव मनोहर—
पावेगी पृथ्वी क्या इतनी बलियाँ देकर ?"

श्री चन्द्र कुँवर जी की कविताओं में मृत्यु के विषाद और जीवन के उल्लास का एक विलक्षण संयोग हुआ है, सन् उन्नीस सौ चालीस में भीषण रोगों में पीड़ित होने के बाद मृत्यु तक पहुँचने में उन के अपने शब्दों में "प्राणों को सुख न मिला, जीवन को चैन नहीं।" अपनी इस स्थिति में मानों वे नित्य-प्रति सायं-प्रातः मृत्यु के द्वार पर पहुँचते और वापस आते रहे। मृत्यु के द्वारों पर बैठकर उन्होंने यम को अपना मित्र बनाना चाहा जिस से उसी बहाने जीवन को कुछ शान्ति मिले—

"बैठ मृत्यु के द्वारों पर भीषण निश्चय से
मैं गाता हूँ यम का यश, वैवस्वत यम का।
क्षीण कंठ है मेरा; क्षण-क्षण पड़ते जाते
मेरे हाथ शिथिल; मेरा उर कुटिल मृत्यु ने

छान कर दिया चलनी-सा, जीवन की धारा
कभी बह गई, जिससे यदि पूरा न गा सकूँ,
यदि न तुम्हारा पौरुष, शब्दों में उठा सकूँ
तो न कुपित होना, हे गहन मृत्यु के स्वामी,
मुझे क्षमा करना हे यम, हे अन्तर्यामी!"

मृत्यु की इस साक्षात् तीव्र अनुभूति के मध्य में कवि ने अपनी 'यम' शीर्षक कविता लिखी जो शब्दों की प्रचंड शक्ति एवं उत्तर-हीन उपालंभ के गुणों से संसार की यम विषयक कविताओं में श्रेष्ठतम स्थान पाने के योग्य है। यमराज के साथ हमारे देश का परिचय कई सहस्राब्दियों से है, किन्तु कठोपनिषद् की एक झाँकी के अतिरिक्त यम का मानव के सामने इस प्रकार का साहित्यिक अस्तित्व अन्यत्र दुर्लभ है। निम्न लिखित कविता अकेली ही कवि को साहित्य में अमर स्थान देने के योग्य बनाती है—

सुनता हूँ गूँज रही महिष कंठ किंकिणी
मेरे उर देश में!
हे यम, मूर्छित हो पड़ी श्याम रजनी,
इस कराल वेश में!
आँखों में धूम्र केतु, कठिन पाश कर में
महिष में चढ़े हुए
हृदय में कठोर शिला, मुख में अंगारे
अलकें फुफकार रहे।
काँप रही चरणों में भिन्न-भिन्न धरणी
सिहर रही काया,
भीम नाद प्राणों में भैरव का आया!
छोड़ तुझे छिपी आज पृथ्वी तम गर्भ में

उठ रे, नादान हृदय,
पोंछ क्षीण लोचन-जल, आज तू अकेला
तज रे जीवन भय!
छोड़ कम्प, बालक-मृग, सिंह के नखों में
डाल शीश अपना!
भस्म हो नगण्य लोक, प्रलयंकर रुद्र की
पूरी कर वासना!
मृत्यु देव आए हैं अतिथि बन तुम्हारे
करो शंख-घोषणा!
महा अतिथि चरणों को जीवन दे पूजना!
एक फूल चुनने को, मुरझा मिट्टी का
स्वयं आप आए!
एक पत्र करने को छेदन संसार से
वज्र शिखा लाए!
करने को उदर लीन एक क्षुद्र निर्झर
महार्णव स्वयं चले!
करता जो सदा रहा आपकी प्रतीक्षा
उसे जीतने निकले
लेकर घन घोर चण्ड प्रलय जलद-जाल-सी
अन्त हीन बाहिनी!
गाता मैं आर्द्र-कंठ स्वागत की रागिनी।
जीवन के तीव्र ताप से विदग्ध प्राण की
शरण चरण आप के
आशा की छलना से व्यर्थ भ्रमित जीवन की

शान्ति चरण आप के
पाकर के परसनाथ आप के करों का
जीवन की क्षुद्रता
बन जाती पारस से चुम्बित लोह की
हिरण्यमयी रुद्रता,
उठ जाता वह ऊपर काम क्रोध मोह से
जन्म-मरण-बंधन से
जिसके हे नाथ आप प्राण-हरण करते।

ऊपर के दृष्टिकोण से कवि ने मृत्यु में तो अपने लिए दया का भाव पा लिया, परंतु जीवन ने उसके प्रति दया न दिखाई—

दया मृत्यु में है, पर मेरे जीवन तुम में दया नहीं
जिला रहे हो जैसे मुझको जाता वैसे जिया कहीं?"

संतोष इतना ही है कि दुख की इस काली घटा में कवि जितना गहरा फँसता गया, उतना ही अधिक यह विश्वास उसमें दृढ़ होता गया कि उसके दुख-भरे गान का भी कुछ अर्थ है और यही आधार पाकर वह जीवन के बोझ को आठ नौ वर्षों तक ढो सका। "मृत्युञ्जय" शीर्षक कविता में उसने अपने इस आत्म-विश्वास और जीवन की सार्थकता को व्यक्त किया है—

"सहो अमर कवि अत्याचार सहो जीवन के
सहो धरा के कंटक, निष्ठुर वज्र गगन के।
कुपित देवता हैं तुम पर; हे कवि, गा-गा कर
क्यों कि अमर करते तुम दुख सुख मर्त्य भुवन के।
कुपित दास हैं तुम पर क्यों कि न तुमने अपना
शीश झुकाया; तुम ने राग मुक्ति का गाया।"

श्री चन्द्रकुँवर जी हिमालय के पृथ्वी-पुत्र थे। वे हिमवंत के सच्चे कवि हैं। उनकी मुक्तक कविताओं में पर्याप्त संख्या उन कविताओं की है जिनमें हिमालय पर्वत और उसके प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है, तापस के रूप में हिमालय की कल्पना पर्वतराज के अडिग उदात्त रूप को कितनी शक्ति से हमारे सामने रखती है—

"शोभित चन्द्र कला मस्तक पर भस्म विभूषित नग्न कलेवर,
कटि पर कृष्ण गजाजिन-सा घन, गिरती घोर घोष कर पद पर,
वज्र छटा-सी दीप्त सुरधुनी।
शान्त नयन गंभीर मुखाकृति; अथ-इति-हीन वीर्य यौवन-धृति,
दीप्त प्रभा रवि उद्भाषित मुख; मूर्तिमान आत्मा की जागृति।
ज्योति-लिखित ओंकार स्वरित ध्वनि आदि पुरुष हे! हे पुराण मुनि!"

"बिखरा जटा खड़ा वह तापस युग-युग से पर्वत के ऊपर;
पूर्व-दिशा की ओर चमकता उसकी रजत जटा पर दिनकर;
पश्चिम में बैठी है रजनी उसी जटा के नीचे छिप कर;
पूर्व दिशा से उमड़ रहे हैं उसकी जटा छोड़ कर निर्झर,
पश्चिम में उसके बालों में लिपट रहे हैं व्याल भयंकर;
पूर्व दिशा से अमृत बरसता, पश्चिम से विष झरता झर झर
कटि पर उसके लहराते घन चूर चूर तारे मस्तक पर;
बिखरा जटा खड़ा वह तापस, मौन एक पर्वत के ऊपर।"

"रैमासी" हिमालय का फूल है और 'काफल पाक्कू' वहाँ का एक पक्षी। "रैमासी" और "काफल-पाक्कू" शीर्षक कविताओं मे मानों कवि ने हिमालय के ही दो ठेठ फूल चुनकर अपने इष्टदेव के चरणों में चढ़ा दिए हैं। रैमासी के दिव्य फूल कैलाश पर होते हैं जिन्हें दिन भर चुनकर पार्वती अपना पावन दुकूल भरती हैं। इन दिव्य फूलों की सुन्दरता देखकर कवि इस पृथ्वी को और अपने आपको भी भूल जाता है। इन सुन्दर पुष्पों का जन्म हिमालय पर बहनेवाले अमृत

के सोतों से हुआ है। उनके सौन्दर्य की यही सीमा है कि हिमालय में घूमकर जो सब से दिव्य भेंट पार्वती शिव के लिए चुनकर लाईं वे यही रैमासों के पुष्प थे—

"कैलाशों पर उगते ऊपर राई-मासी के दिव्य फूल।
माँ गिरिजा दिन भर चुन जिनसे भरतीं अपना पावन दुकूल।
मेरी आँखों में आए वे राई-मासी के दिव्य फूल।
मैं भूल गया इस पृथ्वी को, मैं अपने को ही भूल गया
पावनी सुधा के स्रोतों से उठते हैं जिनके दिव्य मूल,
मेरी आँखों में आए वे राईमासी के दिव्य फूल।
मैंने देखा थे महादेव बैठे हिमगिरि पर दूर्वा पर
डमरू को पलकों में रख कर, था गड़ा पास ही में त्रिशूल!
सहसा आईं गिरिजा, बोली, "मैं लाई नाथ अमूल्य भेंट
हँस कर देखे शंकर ने राई मासी के दिव्य फूल।"

हिमालय के काफल-पाक्कू पक्षी[1] के साथ अपनी भावनाओं को ओत-प्रोत करके कवि ने "काफल-पाक्कू" नामक एक अमर कविता की रचना की। कहा जा सकता है कि कवि चन्द्रकुँवर के रूप में हिमालय ने अपना मानवी काफल पाक्कू पा लिया था। ग्रीष्म की प्रचंड तपन के बाद नन्दन वन-वासी जब यह पक्षी आता है तब दोनों तट प्लावित हो जाते हैं, धरती सुख से फूल उठती है, और उसके मधुरकंठ का अमृत पीकर वन-देवी खिल उठती है—

"क्षण भर में कर देते तुम खग इस पृथ्वी को नन्दन,"

१—काफल-पाक्कू एक पहाड़ी पक्षी का नाम है जो ग्रीष्म ऋतु में पर्वत प्रदेशों में आता है। उसकी बोली 'काफल-पाक्कू, काफल-पाक्कू' होने के कारण उसका यह नाम पड़ा। काफल एक पहाड़ी जंगली फल का नाम है। बोली से समझा जाता है कि यह पक्षी काफल के पकने की सूचना दे रहा है।

बचपन में कवि का इस पक्षी के साथ जो परिचय हुआ था उसकी वह सरसता और व्यंजना यौवन के साथ टिकाऊ न रह सकी। जब युवा कवि और बाल भाव वाले पक्षी की भावनाएँ एक दूसरे से परे हट जाती हैं तब वह सोचता है—

"तुम दिन भर तरु के कानों में अपनी विरह व्यथा कहते,
मुझे देखते ही सहसा रुक कर चुप हो जाते?
मेरी मानवता मुझे शाप, मेरी मानवता मुझे पाप,
तुम्हें कभी विश्वास न होगा क्या ऐसी मानवता पर?
मैं न कभी क्या तुम्हें देख पाऊँगा निज हाथों पर?
गाएँगे हम क्या फिर न कभी कंठों में कंठ मिलाकर?
काफल की छाया के नीचे मैं, ऊँचे तुम तरु पर
एक साथ कहते हों "काफल-पाक्कू" "काफल-पाक्कू?"

× × ×

"मेरी तृष्णा बन जाती यदि वन में कोमल पल्लवित डाल
उस शय्या में रह कर दिन भर गाते तब तो तुम विहग-बाल?
हो पाते मेरे आँसू यदि मेघों के झरते लोचन
धोते तब तो हे मेरे प्रिय, मेरे आँसू तेरा आनन?
क्यों रोता मैं यों बार बार
क्यों होता मैं प्रतिपल अधीर,
क्यों बहता प्रतिपल अश्रु-नीर?"

"जीतू" शीर्षक बड़ी कविता के आरंभ में हिमालय का जो अत्यंत उदात्त वर्णन है वैसा कालिदास के हिमालय वर्णन को छोड़ कर अन्यत्र कम मिलेगा।

चन्द्रकुँवर जी के काव्य का दूसरा उज्ज्वल पक्ष उनकी प्रकृति और वृष्टि संबंधी कविताएँ हैं। हिमालय सैकड़ों प्रकार के उछलते हुए जल-प्रवाहों का प्रदेश

है। मेघ वहाँ खुल कर बरसते हैं और नदी झरनों को अपना वरदान बाँटते हैं। आकाश में स्थित गरजता और बरसता हुआ मेघ मानों नदी से कहता है कि आज मेरे दान की सीमा नहीं है, उठो, एक जन्म क्या कई जन्मों के लिए तुम आज अपने आपको इस उन्मुक्त वर्षण से भर लो और अपनी आशा पूर्ण कर लो—

"मेघ गरजा
घोर नभ में मेघ गरजा
गिरी बरसा
प्रलय रव से गिरी बरसा
तोड़ शैलों के शिखर
बहा कर धारें प्रखर
ले हजारों घने धुँधले निर्झरों को,
कह रही है वह नदी से
'उठ अरी उठ'
कई जन्मों के लिए तू आज भर जा,
मेघ गरजा"

हिमालय के चचंल जल-प्रवाह के साथ क्रीड़ा करने वाली कवि की तरुण वाणी वृष्टि से उमड़ती हुई वरुण की उन्माद भरी प्रणयिनी मंदाकिनी के चित्रण में अत्यन्त सजीव हो उठी है।

आज मंदाकिनी जल में
खेलते हैं वरुण अपनी प्रणय-लीला।
घोर केश-समूह छितरा, काटती अपने किनारे,
गगन को घन-घन कँपाती, पर्वतों को तोड़ बिखरा,

गज घटा-से बन बहाती, आज कर्दम धूमिला सरि
नाचती उन्मादिनी-सी, नाचते हैं वरुण जल में
लहर-लहरों में उठाए हाथ पीला,
आज मन्दाकिनी जल में
खेलते हैं वरुण अपनी प्रणय लीला।"

निराली शब्द योजना और कल्पना की विचित्रता चन्द्रकुँवर जी के काव्य की विशेषताएँ हैं। शुद्ध आनंद प्रदान करने की शक्ति वाले इस महानुभाव कवि के काव्य को अवश्य एक दिन गहरा स्वागत प्राप्त होगा। उस के गूँजते हुए स्वर साहित्य में चिर जीवी होंगे। यह भी विचित्र है कि जिस कवि ने जीवन में आत्म-प्रसिद्धि का एक मार्ग भी प्राप्त न कर पाया उसका काव्य उसकी निजी जीवन की घटनाओं के साथ इतना घनिष्ट संबंध रखता है, चन्द्रकुँवर जी की अनेक कविताएँ उनके जीवन की आत्म कथाएँ ही हैं। यद्यपि अपने शरीर की विशेष अवस्था के कारण कवि विवाह-बंधन में न बँध सका, फिर भी कविताओं से ज्ञात होता है कि विकसित होते हुए यौवन के किसी ललाम मुहूर्त में एक रूप माधुरी ने उसकी आँखों में प्रेम का उज्ज्वल प्रकाश भर दिया था। किसी दूसरे के साथ विवाहिता बनकर, संसार के विशाल जनसमूह में 'शीला' कहीं लीन हो गई। परन्तु उसकी अकल्मष रूप-माधुरी कवि की चाह बनकर कविता में समा गई। प्रेम का यह रस-स्रोत कवि के मुक्तकों को विलक्षण सरसता प्रदान कर कर गया है—

"जीवन का है अन्त, प्रेम का अन्त नहीं,
कल्प वृक्ष के लिए शिशिर हेमन्त नहीं।"

वासुदेव शरण अग्रवाल।

१५ फर्वरी १९४८

हिरण्य गर्भ कवि और नंदिनी

१

हिन्दी-साहित्य सेवियों में बिलक्षण प्रतिभा संपन्न ऐसे अनेक कवि हो चुके हैं जिन्हों ने भारती के मन्दिर में अनेकों दिव्य भाव कुसुमाञ्जलि विकीर्ण की हैं। यश-काया से जीवित रहने वाले ऐसे अमर कवियों में से हिरण्यगर्भ कवि स्वर्गीय चन्द्रकुँवर वर्त्वाल भी एक हैं।

नंदिनी उनकी सौन्दर्यमयी आत्म शक्ति की प्रसन्न गीति कविता है, जिस में आत्म क्रन्दन, आशा-निराशा, पुरुषार्थ-भाग्य, प्रेम और करुणा का प्रकृति की शान्ति में सहज स्वाभाविक पर्यवसान हुआ है। नैसर्गिक प्रतिभा से उद्भूत उस की एक-एक निरावरण भाव मूर्ति संगीत लहरी बन कर प्राणों में समा जाती है. हृदय में गुदगुदी उत्पन्न कर देने की असीम शक्ति उस में है।

नंदिनी में तीन खंड हैं। प्रथम खंड में जन्म-जन्म की वह आकुलता है जो नदियों की धाराओं की भाँति ही मानव जीवन में दिशा-दिशा में सागर की खोज करती हैं जिसे हृदय पर धर कर चिरन्तन शान्ति मिलती है, और इस शान्ति से उसकी छबि में युग-युग के लिए जीवन खो जाता है, द्वितीय खंड में यातनाओं और अनेक दुखद घटनाओं का वर्णन है, एवम् तृतीय अंश में जीवन की वीत राग मयी प्रवृत्ति और चित्त की साम्यावस्था का विकाश है।

प्रारंभिक भूमिका में कवि के जीवन का एक मनोवैज्ञानिक सत्य नग्न रूप में उपस्थिति हुआ है जिस की कुछ पंक्तियाँ अति मर्मान्तक हैं। बचपन की स्मृति और बाल्यकाल के साथियों के समक्ष हृदय गूढ़ गुत्थियों के रसस्य का उद्घाटन कितना स्वाभाविक है, यह स्वाभाविकता उस समय हमारे सामने नग्न रूप में आती है जब भावुक व्यक्ति पाषाण हृदय व्यक्तियों के संपर्क में आता है जब उसे अरसिकों के साथ रहना पड़ता है, इस की एक मर्म स्पर्शी झलक देखिए—

"वह पुराना साथ छूटा, काल ने मुझको अहा इस तरह लूटा,
अब जुटे कैसे अनोखे साथवाले, कर्मकाले और जिनके हृदय काले,
वह साथ हाय कहाँ गया जब पुराने काव्य ग्रन्थो में नया,
सौख्य हम थे ढूँढते जब प्रेम से, बीतते थे दिन कुशल और क्षेम से,
पास थे तुम शंभु, बिक्रम पास था, हृदय तब कभी न उदास था.
और क्या हूँ अब न कुछ पूछो मुझे, तंग मैं आ गया इस हरदत्त से।"

अपने मित्र को पत्र द्वारा व्यक्त किए गए, कवि के ये उद्‌गार हैं। "वह पुराना साथ छूटा" एक मात्र यही शब्द कितनी भावशबलता की अभि व्यंजना करता है, इस का अनुभव रसिक स्वयं कर सकते हैं। 'हरिदत्त से तंग आना' यह भाव व्यगार्थ बन कर उपस्थित होता है कवि ने ये पंक्तियाँ तब लिखी थीं जब वह अगस्त्य मुनि नामक स्थान पर उस स्कूल के रहस्यमंत्री (सेक्रेटरी) हरिदत्त की अध्यक्षता में वहाँ कार्य करते थे। इस व्यक्ति के क्रूर और अशिष्ट व्यवहार से कवि अत्यन्त दुखी हो गया था। क्यों कि स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति से स्वार्थियों का मेल कैसे हो सकता था।

श्री चन्द्रकुँवर का कवि सौन्दर्योपासक कवि है। कला के कोमल अंगों का स्पर्श कवि की अनुभूति विशेष रूप से करती है, जीवन की कला का यह गूढ रहस्य कि मृत इच्छाओं में भी जीवन सुलगता रहता है और वस्तुओं की असुन्दरता तथा काल क्रम के साथ बदलने वाली मानसिक स्थिति पर निर्भर होती है। इसे नंदिनी के कवि ने भली भाँति समझा और कालिदास के 'कस्यात्यन्तम् सुखनुपनतम् दुःखमे कान्त तोवा, नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्र-नेमि क्रमेण' का अनुभव करते हुए दुखों की गहराई से तिमिर-तल में चमकने वाले उज्ज्वल हँसते मोतियों को बटोरा है।

दुख ले गया मुझे गहरे सागर के जल में,
हँसते उज्ज्वल मोती जहाँ तिमिर के तल में,

विश्व की वेदना का परिचय दुख की अनुभूति हुए बिना मिल नहीं सकता दुख की अनुभूति विश्व बंधुत्व की भावना जागृत करती है। पुन: "मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे" की भावना का आविर्भाव होता है। वास्तव में दुख एक प्रकाश है क्यों कि उसी के द्वारा हमें निरीक्षण तथा ज्ञातव्य शक्ति प्राप्त होती है। सुख में अहम् भाव की छाप रहती है। किन्तु दुख अहम् भाव को मिटा देता है और अहम् भाव के मिटने पर दुख कातरता आ जाती है तथा मानवता का विकाश होता है —

सब का हो कल्याण मुझे अब सब भाते हैं।

जब हम जीवन के इस मनोवैज्ञानिक सत्य को समझ लेते हैं तब वासना का निर्वासन, द्वेष का अभाव स्वत: हो जाता है और हृदय की सरलता तथा जीवन की शान्ति अनायास ही उपलब्ध हो जाती हैं। और पूर्ण दुख की अनुभूति हो जाने पर मित्रामित्र की भावना का त्याग हो जाता है एवं एकत्व दृष्टि का लाभ होता है। चन्द्रकुँवर की नंदिनी में अनेक स्थलों पर इस प्रकार के चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति स्तुत्य रूप में मिलती है।

मानवता के विकाश के लिए कुलिश कंटक जालों को छिन्न-भिन्न करके आगे बढ़ाना पड़ता है और ऐसे समय अनंत शक्ति की प्रेरणा भी बांछनीय हो जाती है—"करता हूँ स्वीकार प्रभो मैं न्याय तुम्हारा" निराश और निरुत्साह होना भीषण पाप है एवं अपने को दीन समझना अन्याय है। इस लिए प्रोत्साहन में कवि का बिश्वास है। कर्म की श्रेष्ठता से जीवन स्वर्णमय बन जाता है। कर्म ही जीवन की सफलता है कवि इस ओर सचेष्ट होने का संकेत करता है। जो पूर्णकाम हो वह यदि हीनत्व का भाव हृदय में लाये तो यह अपनी आत्म ज्योति न पहिचानना है, अपने आप को जीवन सुख से बंचित करना है। नंदिनी के कवि की चेतना प्रयत्नशील रही है जीवन में "चरैवेति" के संदेश की प्रेरणा उसने की है।

नंदिनी के रूप में प्रस्फुटित हुई, इस पुरुषार्थी कवि की वाणी में स्पन्दन है। स्निग्धता और प्रकाश की शुभ्रता का अद्भुत सम्मिश्रण है। साथ ही जहाँ कर्तव्य और सत्य की झाँकी नंदिनी में देखने को मिलती है वहीं प्रेमिका के विशुद्ध प्रेम की मूर्ति और उसकी महानता भी मिलती है। प्रेम की नैसर्गिक वृत्ति "मेरे पथ में हँसी किसी की फूल बिछाती" और 'प्यार मुझे कोई गीली आँखों से करती" में वासना का रूप त्याग कर अपने सत्य स्वरूप में उपस्थित होती है। नंदिनी के कवि में कामियों की मदान्धता नहीं है। उसका आदर्श प्रेम केवल ऐन्द्रिय तृप्ति का साधन नहीं हैं। उसकी रचनाओं में नियंत्रित संयमशील स्नेह आदर्श के रूप में व्यक्त होता है। जिससे मानव के हृदय की चिर स्नेह पिपासा शान्त होती है।

केवल प्रेम को वासना की रंगी दृष्टि से देखने वालों के भाग्य में पूत प्रेम का आस्वाद सुख नहीं रहता। वे उस माधुरी के शतांश को भी प्राप्त नहीं करते—"मिली वासना नहीं, मिले छाती पर व्रण ये।" वासना-वृत्ति मानव को चिर पीड़ित करती है और प्रेम आनन्दित करता है। प्रेम के पश्चात् सुखानुभूति और वासनापूर्ति पर पश्चात्ताप होता है। इसकी रूप-रेखा नंदिनी में हृदयंगम रूप से अंकित है। रूप सौन्दर्य का लम्पट प्रेम की सत्ता क्या जाने। प्रेम तो किसी आधार को लक्ष्य में रख कर नहीं होता यही उसकी विचित्रता है। उद्दाम वासना वृत्ति जीवन का अन्त जल्दी कर देती है।

स्वच्छन्द बहनेवाली सरिता की भाँति भाषा-प्रवाहवाली इस कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह भाव और कला दोनों पक्षों का स्पर्श करती हुई आनन्दोत्सिक्त होकर जीवन को सतपथ की ओर ले जाने का सन्देश देती है। रस, भाव, चमत्कृति, अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यञ्जना, भावशवलता व्यावहारिकता आदि दृष्टियों से नंदिनी अत्युत्तम है।

मं० २० अप्रैल १९४८ ई० आचार्य भारतीय

नंदिनी

२

नंदिनी पढ़ने से न जाने कैसा एक निश्वास निकलता है, मन पूछता है -- क्या, यही है कवि जीवन ? प्रेम की चोट खा-खा कर मुरझा जाना --क्या, यही है कोमल हृदय का पुरस्कार ? या—किसी मृदु हृदय की भस्म से ही माई शारदा ऐसा सुन्दर काव्य पुष्प विकसा सकती है ? कवि के प्रेमाश्रु इस काव्य-गंगा के स्रोत से मानव-जीवन को—मनुष्य-हृदय को—एक सुन्दर, सरल—मृदुस्पर्श से पुलकित करते बह रहे हैं। नंदिनी का हर एक चरण सुन्दर, शीतल, सरल, शान्त, दर्द से भरा हुआ है। इस कविता के भाव और कल्पनाओं से इंग्लिश कवि श्येले और गुजरात के राजकवि कलापी की याद आती है। हिन्दी-साहित्य के ऐसे आशादीप को परमात्मा ने इतना अल्पायु क्यों किया होगा ?

भाव नगर (काठियावाड़)   हरिलाल मूलशंकर मूलानी
पहिली जनवरी १६४८ ई०।

नंदिनी

३

नंदिनी एक अत्यन्त मनोहर गीत-कथा है। उसका प्रत्येक शब्द कवि के हृदय से भर कर आया है,इस गीत कथा का अध्ययन करने से हमें इसमें कवि के जीवन की एक अपूर्व झाँकी मिलती है। कवि के जीवन में आशा और निराशाओं का बवंडरउठता है जिसमें कवि की गीत-कथा प्रस्फुटित हो जाती है। कवि के हृदय में एक कसक है, एक वेदना है जो इस गीत कथा में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। लेकिन कवि का जीवन निराशामय नहीं है। अन्त तक उसके जीवनमें आशा की क्षीण रेखा जागृत रहती है। अन्त तक जीवन में किसी की प्रतीक्षा है।

कवि का जीवन कितना विषादमय है, उसकी वाणी में कितना क्रन्दन है यह नंदिनी का एक-एक पद बतला देता है। उसके जीवन में दुख के घने बादल मँडराने लगते हैं। और एक दिन कवि इस पार्थिव शरीर को त्याग देता है।

कवि चला गया यह हमारा दुर्भाग्य है। पर उसकी वाणी हमें समय-समय पर आनन्दित करती है यह हमारा सौभाग्य है, उसे हमने खो दिया, पर उसकी कविताएँ उसके अमर रूप को इतना सजीव कर देती है कि यह विश्वास ही नहीं होता कि कवि चला गया है, लगता है वह हमारे बीच ही विचर रहा है।

शु० २ अप्रैल १६४८ ई०

शकुन्तला जोशी

नंदिनी

४

'नंदिनी' हिन्दी में एक अपूर्व कविता है। उसके प्रथम खंड में कवि ने यौवन की उस व्याकुलता का वर्णन किया है जो अनेकों को, जगत् विख्यात कवि, नाटककार, दार्शनिक तथा चित्रकार बना देती है, और अनेकों को अवनति के उस गहरे गर्त में ढकेल देती है, जहाँ समाज की लांच्छना तथा अवहेलना के अतिरिक्त और किसी की पहुँच नहीं हो पाती।

प्रत्येक मानव के जीवन में चाहे वह देवत्व अथवा साधुता का ही प्रतीक क्यों न हो, एक अवसर आता है जब उसकी अतृप्त-वासना की नदी तरंगित हो उठती है, चाहे यह पशुत्व ही क्यों न हो, पर यौवन के प्रभात काल में सबको ही यही अनुभव होता है। शैशवकाल का वह अल्हड़पन जाता रहता है। हृदय नये-नये अरमानों से भर उठता है। उसकी गति तीव्र हो उठती है। यौवन का रक्त उबल पड़ता है। नेत्र, क्षितिज के सूने पथ पर बिछे रहते हैं;

सम्भव है किसी की प्रतीक्षा में ; क्योंकि जीवन में एक अजीव सूनापन आ जाता है। इसी एकाकी जीवन को लेकर कितनी ही कविताएँ लिखी गई हैं, जिनमें यौवन की तीव्र ज्वाला अपने को भस्म करने का प्रयत्न करती है। ऐसी ही कविताओं में नंदिनी भी एक है।

कवि ने यौवन के उन भावों को, जो सदा किसी को पाने के लिए व्याकुल रहते हैं, हृदय में एक मीठी हूक पैदा कर देते हैं, जिस से एक दबी हुई आह निकलती है, जिस से यौवन की ज्वाला, प्रेम की उत्कंठा, तथा वासना के हलाहल का भास हो जाता है, नंदिनी में प्रत्यक्ष रूप देना चाहा है। अपने प्रयत्न में कवि ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है, शब्द इस प्रकार से चुने गये हैं कि उन से भावों का प्रत्यक्ष चित्र सामने आ जाता है। उस अवस्था की प्रत्येक दशा शब्दों के रूप में रख दी गई है। और जब हम इन दशाओं के शब्द-चित्रों को पढ़ते हैं तो भावनाओं के अर्थ-चित्र अत्यंत सजीव हो उठते हैं और अचानक यह मालूम पड़ता है कि हमने भी तो ऐसा ही अनुभव किया है, पर हमारे पास उन भावों को प्रत्यक्ष रूप देने के लिए शब्द नहीं हैं और हमारी भावुक कल्पनाओं की वे मेघमालाएँ हृदय में ही उमड़-घुमड़ कर छिन्न-भिन्न हो गई हैं।

कवि, प्रेम की उस अमर पुरी में विचरण करना चाहता है जहाँ रुदन में अमृत झरता है। प्रायः अभी मनुष्यों का मानसिक झुकाव ही ऐसा है कि उन्हें दुख अत्यन्त रोमांचकारी प्रतीत होता है, दर्द उन्हें मीठा लगता है। रुदन, हमारी भावनाओं की अपूर्णता को पूर्ण बनादेने में बड़ा सहायक होता है—

"एकान्त मौन धारण करके—
यह व्यथित हृदय जब रोता
जाने क्या क्या तब पाता वह,
जाने क्या क्या तब खोता है?"

इंगलैण्ड के प्रसिद्ध कवि श्यैले का भी तो यही विचार है कि वेदना की

तीव्रता से उत्पन्न हुए गीत ही मधुरतम हुआ करते हैं। किन्तु गहराई से व्यक्त की हुई, श्येले की इस पंक्ति में भी वह तीव्रता, वह शक्तिशाली प्रभावोत्पादकता नहीं है जो नंदिनी की इन चार पंक्तियों में आ गई है—

जो सुख होता धोखा खाकर पछताने में,
जो सुख होता फिर-फिर कर धोखा खाने में,
अमर वही सुख तो करता नश्वर जीवन को
यौवन के पथ पर जाकर ऐसे ही मन को।

सांसारिक दृष्टिकोण से हम दुखों से घबराते हैं, पर वास्तविकता के राज्य में दुख ही भावुकता को जाग्रत कर हमारी कल्पना को चुनौती दे, साहित्यिक क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

नंदिनी के प्रत्येक पद में कुछ ऐसा बहाव है, कुछ ऐसा आकर्षण है, ऐसा जादू है, जो तन्मयता की रसायनशाला में यौवन की विमल भावनाओं को संपूर्ण सांसारिक आडम्बर तथा विकारों से मुग्ध कर स्निग्ध बना देता है, एक अवसर आता है जब प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार करना पड़ता है—'मैंने उन्मत्त होकर तुम्हें प्यार किया है, पागल की भाँति, तुम्हारी पूजा की है।'

कवि ने बड़ी कुशलता के साथ जीवन की उस अवस्था का वर्णन किया है जब प्रकृति सब प्रकार के उपचारों से यौवन का शृङ्गार कर चुकती है; प्रत्येक वस्तु हमें इतनी अधिकाई से प्राप्त हो जाती है कि हृदय उस भाव को सहन नहीं कर सकता, और अपने को किसी पर निछावर करने के लिए व्याकुल हो उठता है। हृदय में एक कसक हो उठती है, अपने आपको मिटा देने के लिए; किसीके लिए प्रेम की वेदी पर हँसते हँसते यौवन की आहुत देने के लिए, कवि कहता है—

मेरे पास आज इतना धन है देने को
नये फूल है पाँवों के नीचे बिछने को।

नये मेघ हैं, नई चाँदनी है नव यौवन
निर्मल मन है, और स्नेह से छल-छल लोचन।

कितनी तन्मयता है इन पंक्तियों में—

मेरा उर सौरभ को बिखरा कर रो-रो कर
कहता मुझको डाली से तोड़ो हँस-हँस कर।

यौवन की पीड़ा साफ झलक रही है। अपने को नष्ट कर देने में ही सुख है।

ऐसे समय में एक ऐसी अवस्था आ जाती है जब हमारी कल्पना, पंख लगाकर दिव्य लोक में विचरण करने लगती है। और स्वर्गीय किरण की एक आभा साकार रूप धारण कर उस कल्पना की कृति बन जाती है, जिसे पाने के लिए हृदय व्याकुल हो उठता है। प्रत्येक हृदय में ऐसी ही एक मूर्ति विद्यमान रहती है, मानों सुर-पुर की वातायन से कोई अप्सरा झाँक रही हो। वह दृष्टिगोचर तो होती है पर उसके पास पहुँचने का मार्ग किसी को नहीं मिलता और इसी पीड़ा की ज्वाला में कवि भी तप रहा है है। वह प्रेम करना चाहता है, अपने आपको निछावर करना चाहता है; पर किसे करे? उसकी कल्पना तो केवल मृगतृष्णा है, वास्तविकता के परे है, अतीन्द्रिय है। वह तो उस सौंदर्य प्रतिमा को सर्वोच्च, साकार रूप देना चाहता है। यौवन का इससे वास्तविक चित्रण और क्या हो सकता है? किसी की प्रतीक्षा में वह पीड़ित रहता है—

सदा प्रतीक्षा ही करता मैं सजल दृगों से
मेरे चारों ओर विचरती हैं संध्याएँ।

और, समय ने पलटा खाया। यौवन का वह पागलपन, वे मादक भावनाएँ सब जाती रहीं। सहसा ही, कवि को यह भास हो आया कि वह धोखा खा रहा था, उसकी उस प्रणय-लीला में कोई सार नहीं था। और अब, जब यौवन का वह तूफान शान्त होगया, जब अरमानों की हिलोरें बैठ गईं, तब उसे अपनी अदूरदर्शिता का बोध हो आया। वह निराशा, ग्लानि तथा क्षोभ का

अवतार बना, अपने भाग्य को शाप दे रहा है। उसके निराशापूर्ण जीवन को प्रकाशित करने के लिए कहीं से भी आशा की झलक दिखाई नहीं देती। केवल जब वह अतीत के उन भावुक भग्नावशेषों को विस्मृति के आँचल से ढाँक देना चाहता है, तभी वह छलना -स्मृति—आकर अपने क्रूर काँटों (करों) से आँचल हटा देती है। पीड़ा, आकांक्षा, लालसा तथा श्रद्धा से परिपूर्ण, कितनी वेदनामय हैं ये पंक्तियाँ जिनमें वह कह रहा है—

दर्शन ही तो माँगा था मेरी आँखों ने?
एक स्पर्श ही तो चाहा था इन बाँहों ने?

जिसे हम समस्त हृदय से प्रेम करते हैं, जिसके लिए सब कुछ निछावर करने को प्रस्तुत रहते हैं, उस का एक स्पर्श, उसकी एक दृष्टि हमें स्वर्गलोक में पहुँचा देती है।

आगे चल कर कवि ने अपने नैराश्यपूर्ण जीवन की एक झाँकी बड़े ही हृदय-विदारक शब्दों में दी है। उस की आशा टूट गई है। प्रकृति का वह वातावरण जिसने एक समय उसके हृदय में गुदगुदी पैदा कर दी थी, उसके यौवन को और भी मादकतापूर्ण बना दिया था, अब फीका पड़ गया है। आशा बड़ी ही मन् भावनी होती है, किन्तु आज उसे वह भी अच्छी नहीं लगती। उसके मानस-पटल पर अभी तक उस उपवन की याद सजग है जहाँ उनका प्रथम मिलन हुआ था। बार-बार वह उसके नेत्रों के आगे आ जाता है, वे स्थान अब भी उनके प्रणय की साक्षी दे रहे हैं। पर अब तो वह सब एक स्वप्न हो गया है। पर फिर भी इतना दुख सहने पर भी जीवन की आशा न मिटी। और अभी भी वह प्रतीक्षा में हृदय-कुटी के पट खोले, दीप जलाए बैठा रहता है।

किन्तु यौवन की दोपहरी भी मेघाच्छन्न हो गई है, बुद्धि तथा विवेक निर्मम प्रहारों से परिपक्व हो गये हैं। अब जीवन में कुछ चाह तथा आकांक्षा नहीं है,

केवल एक असीम सूनापन आ गया है। पर वह सुखी है, उसमें ईश्वरीय शक्ति आ गई है। अब संसार के कोई विकार उसे पीड़ित नहीं कर सकते हैं। न उस पर अपना रंग चढ़ा सकते हैं। अब वह यही कह कर धैर्य ले रहा है कि जो मेरे भाग्य में नहीं है उसके लिए मैं क्यों प्रयत्न करूँ। अब उसका पूर्ण विश्वास ईश्वर पर है, सांसारिक माया-जाल अब उसे फँसा नहीं सकता। वह ईश्वर की भक्ति करना अब जान गया है। अब उसका कथन है—

नारी को तुमने था अपनी बाँहों पर चाहा
पूजा की उसकी, उसको बहु भाँति सराहा,
विष को अमृत समझने में क्या चतुराई थी?
सोचो तो तुमने क्या व्यथा नहीं चाही थी?

पर क्या वास्तव में यह सच है कि 'नारी विष है?'

"दुनिया उदास थी, स्त्री उत्पन्न की गई। स्त्री बेकार थी उसे सुंदरता दी गई। परन्तु चारों ओर अन्धकार था। आँखें उस सुंदरता को देखने के योग्य न थीं। तब विधाता ने मनुष्य का हृदय ले उस पर प्रेम का जादू कर दिया। दुनिया में उजियाला हो गया।" पतंग, दीपक को प्यार करता है; चकोर, चन्द्रमा को; भँवर, कमल को; सब प्रेमी हैं; सब प्रेम करते हैं। और जो प्रेम के नाटक में सफल काम नहीं होते वे रुदन करते-करते दूसरी राह लग जाते हैं यही दशा कवि की भी है। धोखा खाकर उसे सांसारिक प्रेम तथा सौन्दर्य की नश्वरता का ज्ञान हो गया है। और अपना शेष जीवन वह संसार के हित के लिए व्यतीत करने को प्रस्तुत हो आया।

किसी गहरी व्यथा से कवि की धारा दो बार बदली दिखलाई देती है।' प्रेम और वेदना की यह गहरी मार्मिक, पवित्र तथा उज्ज्वल अभिव्यक्ति 'नंदिनी' के रूप में साहित्य में सदैव वंदनीय रहेगी।

६ दिसम्बर १९४६ ई०

विमला सुवय्या

नंदिनी

५

वर्तमान हिन्दी-साहित्य में नंदिनी ने एक रिक्त स्थान की पूर्ति की है। आधुनिक कविताओं, विशेष कर प्रेम विषयक कविताओं में पाई जाने वाली अस्पष्टता, प्रभावहीन समाप्ति और अनुभूति से अधिक कल्पना की बहुलता से नंदिनी मुक्त है।

नंदिनी की पंक्तियाँ सरस, मनमोहक, प्रवाह युक्त और अन्त तक उत्सुकता बढ़ाने वाली आनंद नंदिनियाँ हैं, जिन की तरंगें, कभी हमें सौन्दर्य के, कभी प्रेम के, कभी विह्वल आंतरिक शान्ति के दर्शन कराती हैं। मन, पुनः पुनः इन तरंगों में जाना चाहता है, पर आगे बढ़ने की उमंग, समाप्ति से पहले ऐसा नहीं होने देती। नंदिनी इतनी सुन्दर है कि एक बार पढ़ लेने से जी नहीं भरता। एक बार, दो बार, तीन बार. कई बार के अध्ययन से भी तृप्ति नहीं होती। उसे एक बार और पढ़ने को इच्छा करती है। पाठक चित्रलिखित सा, रह जाता है। कई पद अपने आप, केवल एक बार के अध्ययन से ही याद हो जाते हैं। लगता है स्वर्ग की मंदाकिनी पृथ्वी पर आगई है और हम गंगा में स्नान करने की शीतलता प्राप्त कर रहे हैं। प्रतीत होता है चन्दन की डाली-डाली, पत्ती-पत्ती अपनी सुगंधि से हमें पुलकित कर रही है।

नंदिनी की कथा तीन छोटे-छोटे भागों में व्याप्त है। पहिले तथा दूसरे भाग में, मानवी प्रेम में भूले हुए मानव का सजीव चित्रण है। परंतु तीसरे भाग में प्रेम की निराशा को आध्यात्मवाद में बदल कर एक नूतन रूप दे दिया है। नंदिनी का यह भाग वास्तव में हिन्दी-साहित्य में नवीनता का प्रतीक है। कवि के साथ ही साथ पाठक के मन में शांति व्याप्त हो जाती है। ऐसा विदित

होता है कि भूला हुआ नाविक किनारे पर आगया है। घोर निराशा में आशा की बिजलियाँ चमकती हैं तो भूले हुए पथिक को ठीक मार्ग बताकर वे उसे उस के मनोनीत स्थान पर पहुँचा देती हैं। कवि के साथ ही साथ पाठक भी नंदिनी के पहले तथा दूसरे भागों के उतार-चढ़ाव को पार करता हुआ निश्चित-स्थान को पहुँच जाता है। वहाँ पहुँचने पर उसे भी वैसी ही प्रसन्नता होती है जैसी कि दिनों तक इधर उधर भटकने के बाद घर लौटने पर पथिक को होती है।

नंदिनी का प्रारंभ ही प्रेम की भावना को लेकर होता है।. कवि अथवा प्रेमी अपनी प्रेयसी के ध्यान में निरंतर रहना चाहता है। उसी भाइना को लेकर वह कहता है।

'मुझे प्रेम की अमर पुरी में अब रहने दो'

वह एक ऐसे स्थान की कल्पना करना चाहता है, जहाँ वह निरन्तर अनवरत गति से अपनी प्रिया का नाम जपता रहे, तथा उसके मुख की ओर प्यार से देखता रहे, और उसके मधुर बचनों को सुनता रहे। प्रेमी, अपनी समस्त इन्द्रियों को एकाग्र करके केवल अपनी रूपमयी प्रेयसी के ध्यान में लगाना चाहता है।

बिचार-धारा बदलती है। प्रेमिका का वियोग असत्य प्रतीत होता है। 'अलकें बिखराए आँसू में नयन डुबाए' वह दसों दिशाओं में घूम रहा है। प्रेमिका की खोज में उस की दशा विक्षिप्तों की तरह जान पड़ती है। दुखी देवताओं की तरह वह ऊपर को दृष्टि उठाए, शून्य वनों में, विपुल पथों में घूम रहा है।

प्रेमिका से वर्षों से साक्षात्कार नहीं हुआ है। वियोग-अवधि का केवल ध्यान आजाने से उसके नेत्र सजल होजाते हैं। भावों की गहरी अनुभूति में प्रेमिका का चित्र उस के नेत्रों के सम्मुख घूमने लगता है; जिसे देख कर उस के हृदय में अब भी बसन्ती छटा बिखरने लगती हैं। उसे अनुभव होता

है जैसे, प्रेमिका को रिझाने के लिए ही उस में यौवन आया है। प्रेमिका का स्नेह-दीप उस के जीवन-पथ को प्रकाशित कर रहा है।

नंदिनी का प्रेम उसे विशाल-सागर के रूप में जान पड़ता है, जिस में वह तुच्छ सरिता के समान मिल जाना चाहता है। उसी प्रेम-सागर के खोज-निकालने में उस के जीवन की सार्थकता है।

जीवन की क्षण-भंगुरता पर विचार करता हुआ प्रेमी आगे कहता है कि उस की जीवन-सरिता, सागर के न मिलने पर रुकेगी नहीं। वरन् सागर के अभाव में यों ही छिन्न-भिन्न हो जायगी।

इस समय उसका यौवन अपने चर्मोत्कर्ष पर है। हृदय, नवीन उमंगों से, रंगीन-कल्पनाओं से तथा कोमल भावनाओं से भरा है। ऐसे समय में कल्प-वृक्ष बन कर वह उसकी समस्त इच्छाओं को पूरा करता। और तब उसकी रानी उससे मरने को कहती तो यह भी वह सहर्ष स्वीकार कर लेता। परंतु बिना प्रेयसी से मिले वह मरने को भी उद्यत नहीं है। भय है—

'कहाँ मिलेगी मरकर इतनी सुन्दर काया ?'

अपनी प्रेयसी का कोई भी सुखद-संवाद न मिलने से उसकी सुरदुर्लभ तरुणाई तथा यौवन यों ही निकल गया। परन्तु प्रिय-मुख की स्मृति आ कर अब भी उसके जीवन-पथ पर फूलों की बृष्टि कर देती है। जीवन की अंधेरी रात में जब पथ नहीं सूझता है तो उसकी प्रेयसी की छाया उसके मस्तिष्क में पथ-प्रदर्शक का काम करती है।

प्रिय के अगाध प्रेम की स्मृति में वह घुल जाना चाहता है। उसके प्राण, प्रिया की मृदु ध्वनियों की गुँजन में डूबे रहना चाहते हैं। प्रिया की याद की मर्मान्तिक पीड़ा भी उसे बुरी नहीं लगती—

सच तो यह है कि अपनी प्रेमिका की याद में आँसू बहाना भी उसे प्रिय-

तर लगता है। प्रेमदेव के बाणों से बिंधकर जिस हृदय से रोदन की पुकार नहीं उठी उसका जीवन ही व्यर्थ है, ऐसी उसकी धारणा है। यह सत्य है कि प्रेमिका-मिलन की बात सपने के सदृश है, परन्तु जितना सुख उसे इस स्वप्न देखने में मिलता है वह क्या वास्तव में मिल सकता है ? आशा की पतवार पर उसकी जीवन-नैय्या झूल रही है। वह अपने को एक तुच्छ अकिंचन रूप में, तथा नंदिनी को सुख-सरसाने वाली देवता के रूप में देख रहा है।

कवि, अनवरत गति से हृदय के उद्‌गारों को प्रकट करता चला जा रहा है। एक के बाद एक भाव जिस प्रकार हृदय में आ रहे हैं, उसी प्रकार से उस ने उन्हें कविता का रूप दे दिया है। चित्रण, हृदय-स्पर्शी तथा मार्मिक हैं और सहज ही सहानुभूति, वियोगी कवि के प्रति हो जाती है।

नंदिनी के द्वितीय खंड में भी यही भावना मिलती है। अपनी विचार-धारा में डूबता-उतराता हुआ कवि अपने प्रेम के मूल उपकरणों पर ध्यान देता है। इस समय उसे अपनी भूल का ध्यान होता है। वह विचार करता है कि भूल से उस ने प्रेयसी की करुण-दया को ही प्रेम समझ लिया, परन्तु उस की नंदिनी ने उसे कभी भी प्यार नहीं किया। किन्तु वह ऐसा सोच कर स्वयं अपने पर विश्वास नहीं कर पाता। प्रियतमा के सुन्दर मुख का ध्यान, विद्युत की भाँति चमक कर, उस के नेत्रों के सम्मुख घूम जाता है।—

"आह एक दिन कितने निकट सरस वह मुख था !
आह एक दिन इन प्राणों में कितना सुख था !"

उस समय उसे देव-दुर्लभ सुख प्राप्त था। पतझर में भी बसन्त दृष्टिगोचर होता था। तथा गिरते हुए पत्र भी उस समय हँस-हँस कर उगते हुए से दिखलाई देते थे। प्रेयसी के अभाव में अब वह नीरव निश्चल हो गया है।

पवन के चलने से आशा रूपी पत्र झर गये। इस निराशा में चाँदनी भी

नहीं भाती, कोकिल का गान सुरीला नहीं लगता, तथा ओंठों पर हास्य भी नहीं मुसकाता। निराशा अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गई है। आशा की एक भी रेखा नहीं दिखाई देती। उस का दुखित मन आज सब दिन के बदले रोना चाहता है। संसार उसे मरु-देश के सदृश लग रहा है, जहाँ प्यासा निर्झर भटक रहा है। उसका धैर्य्य टूटा ही चाहता है। समझ में नहीं आता—

'कहाँ हाय लेजाऊँ इस टूटे जीवन को?
कैसे थामूँ आँखों के अकूल रोदन को?'

इसी समय उसकी कल्पना में उस प्रिय बन की धुँधली सी छाया घूमने लगती है जहाँ नंदिनी से उसका पहला साक्षात्कार हुआ था। वे कुंज तथा लता-मंडप अब भी उस के प्रेम की स्मृति के साक्षी रूप खड़े हुए हैं।

विचार धारा बदलती है। नंदिनी उसकी रानी न होकर किसी और की बधू के रूप में दिखाई पड़ती है—उन्ही परिचित कुंज-लताओं के नीचे जहाँ वह कवि के साथ मिली थी। अब वही लता-मंडप पराये हो गये हैं—

"हुए अपरिचित वे चिरपरिचित स्थान प्रणय के।
होते अब कुछ और और ही भाव हृदय के।"

अपनी आँखों से, कवि यह सब होते हुए देख रहा है, फिर भी उसे नंदिनी से कोई द्वेष नहीं है—इतना अवश्य है कि अब जीवन के रहने की कोई आशा (उसे) नहीं रह गई है। नंदिनी के साथ ही साथ जीवन की भी आशा चली गई। कवि का हृदय-मंदिर सूना हो गया।

वर्षा-रितु का आगमन है। सदैव की ही भाँति, गगन-मंडल में मेघों की पंक्तियाँ छा गईं। मादक पवन लहराने लगी परंतु उसे तो प्रकृति भी निराशा प्रदान करती हुई सी लगती है।

"मेरे भावी जीवन को घन तम से भरता
मेरे जीवन का नक्षत्र गगन से झरता

निराशा के घोर अंधकार में ईश्वर भी उसके साथ अन्याय करता-सा प्रतीत होता है।

"काँटों के किरीट से उसने मुझे सजाया।
काटों का पथ उसने मेरे लिए बनाया।"

उसके जीवन को कोई और बिता रहा है—

"कोई और बिताता है मेरे जीवन को
प्यार और कोई करता मेरी गुंजन को।"

प्रकृति ने भी उसकी अवहेलना कर दी है—

'किसी और के लिए फूलते फूल, विजन में।
किसी और के लिए जागते दीप, सदन में।'

कवि, अपने ही नेत्रों से, अपनी संचित राशि को लुटते हुए, देख रहा है। पहले उसे देखकर, उसकी अधीर प्रिया मिलने के लिए, हँसती हुई, तुरंत बाहर निकल आती थी। परन्तु—

'मुझे देख कोई न निकलता अब हँस बाहर'

उसकी प्रिया, किसी दूसरे की हो गई है—कवि को अपनी नंदिनी के साथ विहार करने का, आनंद मनाने का सौभाग्य न मिल सका।

इस समय उसे जीवित रहना, मृत्यु से कठिन जान पड़ता है। यद्यपि अन्य सब पदार्थ अपने पूर्व नियमों पर हैं, प्रकृति उसी प्रकार हँस रही है, परन्तु कवि की भावनाओं में ज़मीन-आसमान का अंतर आ गया है। उसे कुछ नहीं अच्छा लगता—

'ये मेरी आँखें हैं जिनको कुछ न सुहाता'

इस समय यदि प्रेयसी से साक्षात्कार हो भी जाये तो वह डरते-डरते मिलता है—

'परिचित नयनों से अब डरते-डरते मिलता
बुझा दीप-सा, अंधकार में डूबा रहता।'

अब वह अपनी नियति के सहारे चुपचाप बैठा है। भाग्य में शायद ऐसा ही होना बदा था।

'नव बसन्त में ही मेरे तरु को झरना था?
मुझ को इस उठते यौवन में ही मरना था?

यह किस को पता था कि—

'था अदृष्ट में इतना दुख, किसने जाना था?

कवि ने तो जीवन को हँसी खेल ही माना था—

'हँसी-खेल ही, जीवन को हमने माना था।'

परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी, कवि में आशा की एक काँपती हुई किरण शेष है। पूर्ण निराशा अभी नहीं है। उसके पथ में अब भी धुँधला-सा प्रकाश छाया हुआ है।

'पथ में छाया है प्रकाश अब भी धुँधला-सा'

इस खंड के अंत में पहुँचते पहुँचते, कवि की निराशा, फिर, आशा में परिणित होने लगी है, और तृतीय खंड एक नई भावना को लेकर प्रारंभ होता है।

तृतीय खंड का आरंभ शान्ति की एक मधुर किरण को लेकर होता है। कवि, वियोगाग्नि में तप कर शुद्ध हेम के सदृश हो गया है। इस समय वह

अपने जीवन को मंगल के पथ पर ले जाने के लिए उद्यत है, लौकिक प्रेम का यह अलौकिक स्वरूप, प्रेमी के लिए अग्नि-परीक्षा तथा कवि की पवित्र भावना का प्रतीक है। आत्मा का आध्यात्मवाद की ओर झुकना, शान्ति की चिर निद्रा में सोने के सदृश है।

यद्यपि प्रारंभिक दो खंड पढ़ चुकने के बाद रसिक तथा भावुक पाठक का मन सहसा ही इस खंड को पढ़ने के लिए उद्यत नहीं हो जाता, प्रारंभ में उसे यह खंड नीरस-सा प्रतीत होता हैं। जो उत्सुकता प्रारंभ के दो खंडों में जागृत हुई थी, एकाएक नष्ट होने लगती है, परन्तु साहसी तथा धैर्यवान पाठक अबाध गति से बढ़ता ही जाता है, इस खंड के अन्दर पैठ जाने पर उसे उसकी महानता का पता लगता है।

किसी भी वस्तु का चरमोत्कर्ष हो जाने पर उसमें शिथिलता आने लगती है। काव्य की दृष्टि से नंदिनी के तृतीय खंड में पहुँच कर पाठक में वह उमंग तो नहीं रह जाती जो जिज्ञासा को, मन में तीव्र बनाये रहती है। किन्तु यदि सदैव दूसरे खंड में ही नंदिनी समाप्त हो जाती तो वह भी शायद अन्य साधारण कविताओं के अंतर्गत आ जाती। उमंगों के शान्ति हो जाने पर जो सौन्दर्य हृदय में या वर्षा के बाद प्रकृति में आता है वही सौन्दर्य पहले और दूसरे खंड की वेदना शान्त हो जाने पर नंदिनी के तीसरे खंड में आया है। कला की दिव्यता, भारतीय की महानता और जीवन की व्यावहारिकता तीनों के मेल में नंदिनी का तीसरा खंड है। कालिदास अपनी शकुन्तला, अथवा पार्वती का वास्तविक सौंदर्य, रूप वासना के भस्म होजाने के बाद दिखाते हैं और शान्त वातावरण में उसको पहुँचा देने पर विश्राम लेते हैं। शिव की सिद्धि, काम-दहन हम देखते हैं के पश्चात्, भारतीय संस्कृति की मान्यता है, और व्यावहारिक जीवन में भी कि किसी भी क्षेत्र में पूर्ण निराशा हो जाने के पश्चात् अपनी भावनाओं को सहज ही या तो आध्यात्मवाद की ओर या फिर जनसमुदाय की

भलाई के लिए या फिर ऐसे ऐसे ही कार्यों के करने में लगा देता है जिनसे उसकी आत्मा को शान्ति मिलती है।

जीवन-भर प्रेम के स्वप्न देखते रहने के बाद, कवि को जब प्रेम का बिहार-स्थल नहीं मिलता है तो वह परमानन्द के चिर-शान्त प्रेम में अपनी भावनाओं का रूप देखने लगता है। यदि उसको नंदिनी से सच्ची प्रेमानुभूति न हुई होती तो बहुत सम्भव था कि वह आध्यात्म के क्षेत्र में इतने ऊँचे शिखर पर न पहुँच पाता, जिस प्रकार, प्रिया-प्रेम की अनुभूति की प्रेरणा से 'मानस' जैसा रत्न, तुलसीदास निकाल सके, उसी प्रकार बत्वीलजी ने भी नंदिनी के तृतीय खंड में आध्यात्म का स्वरूप रखकर, प्रेम को सच्ची कसौटी पर कसकर खरा साबित किया हैं, तृतीय खंड में जो रस सरसाया गया है वह साधारण रस नहीं 'अमृत-रस' है।

यद्यपि इस खंड के भी प्रारम्भिक छन्दों में उसे अतीत की याद आकर दुखित-सा कर देती है, परन्तु वह साहस के साथ धीरे-धीरे मंथर मति से आगे बढ़ रहा है। इस समय सुख तथा दुख में उसे कोई विशेष अन्तर नहीं ज्ञात होता है—

'सुख न हँसा सकता है, दुख न रुला सकता है'

कवि को अपनी असफलताओं पर, दुखों पर खेद नहीं है, वरन् वह अपने दुख का आभारी है कि उसने कवि को जीवन की गहरी से गहरी थाह को दिखा दिया जहाँ पहुँचकर उसे जीवन के सच्चे स्वरूप के दर्शन हुए—

'दुख ने ही मुझको प्रकाश का देश दिखाया
सुख ने मुझको हलका सा ही राग सुनाया।'

कवि की अहंभावना आज विश्वमैत्री में परिणित हो गई है। गेहहीन होकर भी आज वह 'सच्चा गेही' है। आज उसके सुख का अन्त नहीं है। आज उसका प्रेम, वासनामय प्रेम न होकर सच्चा प्रेम हो गया है—

गई वासना, गया वासनामय यौवन भी,
मिटे मेघ, मिट गया आज उनका गर्जन भी,
मैं निर्बल हूँ पर मुझको ईश्वर का बल है
चाह नहीं है अब मेरा जीवन शीतल है।

ईश्वर का सहारा लेकर तथा विश्वमैत्री के सिद्धान्त को आगे रखकर वह तृष्णा छोड़कर जीवन-वन में घूम रहा है, आज उसे—

"चाह नहीं है, असफलता का शोक नहीं है।"

अब वह कभी भी अपने मुख से निराश वाणी नहीं निकलेगा। आज उसका ईश्वर पर अटल विश्वास हो गया है, अब वह विपरीत भाग्य का भी सामना करने के लिये उद्यत है—

प्रभो सीख लेता जो करना भक्ति तुम्हारी
उसे सदा आशा देती है शक्ति तुम्हारी।
रहता है वह सदा तुम्हारे जग में सुख से
वह न कभी डरता विपरीत भाग्य से, दुख से।

इस नवीन सुख की अनुभूति में उसे अपना अतीत एक बड़ी भूल-सा प्रतीत होता है। वह कहता है—

"विष को अमृत समझने में क्या चतुराई थी।"

वास्तव में वह उसकी एक बड़ी भारी भूल थी जो उसने वासना को ही प्रेम समझ लिया, शरीर को ही रूप मान लिया और देह ही पाने की कामना की, नारी के कामिनी रूप की विशेष उपासना की। उस समय उसके ज्ञान-चक्षु मुंदे हुए थे, और जब—

'खुली आँख जब ईश्वर के चरणों में आये
रूप और आनंद ज्ञान तब तुमने पाये।

देखी लौकिक रूपों की व्यर्थता हृदय में
देखा उसको जो रहता स्थिर, वस्तु प्रलय में।

परमानंद के सुखदायी रूप के दर्शन हुए तो सुख की अनुभूति से सजल हो उठा। और कवि, आत्म-विभोर होकर उस सुखदायी परमानंद का गुणगान सजल नेत्र से करने लगा।

अभी तक, कवि का ईश्वर में विश्वास न था। उसे अपने आप को नास्तिक कहने में ही प्रसन्नता होती थी, उस समय उसके हृदय में आवेश था, जिसने उसकी विवेकशक्ति नष्ट कर दी। उस समय—

नास्तिक कहलाने में जब होता गौरव था,
पाप पुण्य का क्या विचार हो सकता तब था।

लेकिन अब जब ईश्वर की शरण में आ गया है तो जीवन भर यहीं रहेगा। और अपने पापों का प्रायश्चित करके, आत्मा को परमात्मा में मिलाने का प्रयत्न करेगा।

उस का हृदय, आज तप कर शुद्ध हेम के सदृश हो गया है। आज संसार में सभी उस के मित्र हैं, पूरा संसार उस का परिवार है—

'सभी दिशाएँ मित्र, शत्रु हैं आज न कोई
पाप नहीं, प्राणों में मेरे लाज न कोई,

सांसरिक माया-जाल से वह बाहर निकल आया है। अब उसे लोक-लाज की चिन्ता नहीं है। किसी भी वस्तु से उसे अनुराग नहीं रह गया है, केवल परमानंद में मिल जाने की तीव्र इच्छा है। इस समय वह एक त्यागी योगी के रूप में हमारे सामने आता है—

वस्तु नहीं ऐसी कुछ, मुझे चाह हो जिसकी
कोई क्या सोचता न कुछ चिन्ता है इसकी।

इतना ही नहीं, गेरुआ वस्त्रों में ही अब उसे आनंद मिलता है—

'वसन गेरुआ इससे न अच्छा साज न कोई !

उसके जीवन में पुनः उत्साह छा गया है। नंदिनी के वियोग में उसे प्रकृति भी दुख सरसाने (बढ़ाने) वाली प्रतीत होती थी परन्तु अब ईश्वर की आराधना से उसके जीवन में फिर से शरद रितु लौट आई है। पतझड़ बीता और अब कवि के उजड़े हुए जीवन-वन में पुनः बसन्त का आगमन हो रहा है। इस समय—

'हुए असुन्दर भी सुन्दर, मिलकर सुन्दर से'

इस समय भीतर बाहर सभी ओर उज्ज्वलता छाई हुई है। उसके अन्तस्तल में पूर्ण शान्ति है जिसको अब कोई नहीं भंग कर सकता है—

पूर्ण शान्ति जिस को न भंग करते विग्रह स्वर

कवि, चिर-शान्ति का अनुभव कर रहा है। इस समय वह, संसार की सभी वस्तुओं से विदा ले रहा है। अब तक के जीवन के अभिन्न मित्र-उस के प्यारे गीत—जिन्हें लिखने में उस के हृदय का भार हल्का होता सा प्रतीत होता था, आज वह उन से भी विदा लेने को उद्यत है।

इस समय वह अपने को इस जगत की स्वाभाविक बाधाओं से तथा बन्धनों से मुक्त हुआ समझ रहा है। वह फिर इस संसार में नहीं आना चाहता, क्योंकि उसकी कविता इस संसार की है, इसलिए वह उस से भी विदा ले रहा है।

यद्यपि मानव होने के नाते मानवी बातों से एकदम इतनी विरक्ति हो जाना स्वाभाविक नहीं लगता, परन्तु यदि सहानुभूति के साथ कवि के मन की अवस्था पर ध्यान देते हुए यह शब्द पढ़ें तो चाहे यह पढ़ने में अस्वाभाविक ही लगे परन्तु हमारी सहानुभूति को कभी भी नहीं छोड़ता। हम कवि के मुख से ऐसी बातों को भी सुनने को उद्यत हो जाते हैं।

प्रेम की गहरी अनुभूति जो उसे एकदम नीचे ले गई थी अब अपने उतने ही उत्थान पर है। अपने ज्ञान-चक्षुओं से उसने ईश्वर के दर्शन कर लिए हैं, संसार मुझे अब माया-जाल, तथा काम, लोभ और मोह का ही क्रीड़ा स्थल नहीं लगता। उस का पथ प्रशस्त हो गया है। इस समय उसके मन में विश्व कल्याण की भावना है। वह अपने गीतों को भी यही आदेश दे रहा है—

करुणा वह फैलाना उर को स्वच्छ करे जो
प्रणय गीत वह गाना उर के कलुष हरे जो,

समस्त विश्व अब मुझे एक परिवार के सदृश जान पड़ता है, जिसमें छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, सब एक समान हैं। अपने गीतों से कह रहा है—

ऊँच नीच सब के द्वारों पर जाकर गाना,
सबको एक समझना तुम सब को अपनाना।

भलाई-बुराई भी उसे नहीं छू सकती है—वह पूर्ण वीतराग है। चिर अशान्ति के पश्चात् चिरशान्ति की जो किरणें कवि के जीवन में आई हैं वे अकेली अपनी शान्ति की नहीं, विश्व-शान्ति की किरणें हैं। अन्तिम पद में शान्त रस का जो रूप रक्खा गया है वह काव्य तथा प्रभाव दोनों की ही दृष्टि से बड़ा प्रभावोत्पादक है, शान्ति की खोज के साथ कविता का प्रारम्भ होता है, और चिर शान्ति की प्राप्ति में उसका अन्त है—

विपुल शान्ति में गीत कथा मेरी समाप्त हो
शान्ति, शान्ति, सब को जीवन में शान्ति प्राप्त हो

उर्मिला सक्सेना

१ फर्वरी १९४७ ई०

नंदिनी

१

मुझे प्रेम की अमर पुरी में अब रहने दो !
अपना सब कुछ देकर कुछ आँसू लेने दो !
प्रेम की पुरी, जहाँ रुदन में अमृत झरता ,
जहाँ सुधा का स्रोत उपेक्षित सिसकी भरता !
जहाँ देवता रहते लालायित मरने को ;
मुझे प्रेम की अमर-पुरी में अब रहने दो !

मधुर स्वरों में मुझे नाम प्रिय का जपने दो !
मधु रितु की ज्वाला में जी भर कर तपने दो !
मुझे डूबने दो यमुना में प्रिय नयनों की !
मुझको बहने दो गंगा में प्रिय वचनों की !
मुझे रूप की कुंजों में जी भर फिरने दो !
मधुर स्वरों में मुझे नाम प्रिय का जपने दो !

अलकें बिखराए, आँसू में नयन डुबाए,
पृथ्वी की, अपने तन-मन की याद भुलाए,
मैं गाऊँगा विपुल पथों पर, शून्य बनों में,
नदियों की लहरों में, कुंजों की पवनों में,
दुखी देवता-सा ऊपर को दृष्टि उठाए,
अलकें बिखराए, आँसू में नयन डुबाए !

जन्म-जन्म से खोज रहा है उसको जीवन,
जिसे देख कर काँप उठे नयनों में रोदन,
जिसे देख कर खिलें बसंत हृदय में मेरे,
जिस के दीप जलें इस शून्य निलय में मेरे,
जिसे लुभाने को आया है मुझ में यौवन,
जन्म-जन्म से खोज रहा है उसको जीवन!

मेरा उर सौरभ को बिखरा कर रो-रो कर,
कहता मुझ को डाली से तोड़ो हँस-हँस कर!
मुझ को चूमो, मुझे हृदय के बीच छिपाओ,
मुझ को अपने यौवन का शृङ्गार बनाओ,
मरने पर मुझे गिरा दो धीरे से भू पर,
मेरा उर कहता सदा यही रो-रो कर!

मेरे उर से उमड़ रही गीतों की धारा,
  बन कर गान बिखरता है यह जीवन सारा !
किन्तु कहाँ वह प्रिय मुख जिसके आगे जा कर,
  मैं रोऊँ अपना दुख चातक-सा मँडरा कर !
किस के प्राण भरूँ मैं इन गीतों के द्वारा ?
  मेरे उर से उमड़ रही गीतों की धारा !

मेरे काँटे मिल न सकेंगे क्या कुसुमों से ?
  मेरी छाँहें मिल न सकेंगी हरित द्रुमों से ?
मिल न सकेगा क्या शुचि दीपों से तम मेरा ?
  मेरी रजनी का ही होगा, क्या न सबेरा ?
मिथ्या होंगे सभी स्वप्न क्या इन नयनों के ?
  मेरे काँटे मिल न सकेंगे क्या कुसुमों से ?

कहाँ मिलेगी मर कर इतनी सुन्दर काया,
जिस पर विधि ने है जग का सौन्दर्य लुटाया ?
हरे खेत ये, बहती विजन बनों की नदियाँ,
पुष्पों में फिरती भिखारिणी ये मधुकरियाँ !
कहाँ मिलेगी मर कर इतनी शीतल छाया ?
कहाँ मिलेगी मर कर इतनी सुन्दर काया ?

नदी चली जाएगी, यह न कभी ठहरेगी !
उड़ जाएगी शोभा, रोके यह न रुकेगी !
झर जाएँगे फूल, हरे पल्लव जीवन के,
पड़ जाएँगे पीत एक दिन शीत मरण से !
रो-रो कर भी फिर न हरी यह शोभा होगी !
नदी चली जाएगी, यह न कहीं ठहरेगी !

मेरी बाँहें सरिताओं सी आकुल होकर ,
दिशा-दिशा में खोज रही हैं वह प्रिय सागर ,
जिसे हृदय पर धर कर मिलती शान्ति चिरन्तन ,
जिस की छवि में खो जाता युग-युग को जीवन ,
जिसे देख कर कुछ न दीखता फिर पृथ्वी पर ,
मेरी बाँहें खोज रही हैं वह प्रिय सागर !

मर कर भी ऐसे दिन फिर न कभी आएँगे ,
पके शस्य यों ही कितने दिन रह पाएँगे ?
ठहरे खेत विजन वन के, जिनकी छाया में—
अवसर ताक रही हैं, पशुओं की इच्छाएँ !
थक कर कभी शिथिल लोचन ये मुँद जाएँगे !
यों ही प्राण प्रतीक्षा कब तक कर पाएँगे ?

आज अतिथि यदि मेरे यौवन का आ जाता,
कितना हो कर तृप्त यहाँ से फिर वह जाता!
कल्प-वृक्ष बन कर उसकी अगणित इच्छाएँ—
पूरी करता मैं उसकी सारी भिक्षाएँ!
मेरे मन में दुख न हाय, कुछ भी रह जाता,
इसी रात यदि वह प्रिय आने को कह जाता!

इस जीवन में कभी न सुख की छाया आई!
इस यौवन ने चाह न वह पूरी कर पाई!
मुझे न कुछ संदेश कहीं से नीरद लाए!
मुझे न हंसों ने सुख के संवाद सुनाए!
मेरी बीती यों ही सुर दुर्लभ तरुणाई!
इस यौवन ने चाह न वह पूरी कर पाई!

हाय आज के फूल न कल तक रह पाएँगे !
नयनों में ही कोमल स्वप्न बिखर जाएँगे !
आज हो रहा है मेरी कुञ्जों में गुञ्जन,
और उठेगा कल द्रुम-द्रुम से निष्फल रोदन !
क्या न आज ही वे कर इनको चुन जाएँगे ?
हाय आज के फूल न कल तक रह पाएँगे !

मेरे पास आज इतना धन है देने को !
नये फूल हैं पांवों के नीचे बिछने को,
नये मेघ हैं, नयी चाँदनी, है नव यौवन,
निर्मल मन है, और स्नेह से छल-छल लोचन !
कौन जानता है, कल ही क्या है होने को ?
मेरे पास आज इतना धन है देने को !

आशा की डोरी में जीवन झूल रहा है,
कांटों में यह पीड़ित यौवन फूल रहा है!
आती भाँति-भाँति की किरणें और हवाएँ,
पड़ती प्राणों पर सौ-सौ सुन्दर छायाएँ!
हाय! हृदय प्रिय का क्यों इसको भूल रहा है?
कांटों में यह पीड़ित यौवन फूल रहा है!

मेरे पथ में हँसी किसी की फूल बिछाती,
याद किसी की मुझ को शुचि करने को आती;
उठता जब तूफ़ान, गगन में मेघ गरजते,
अन्धकार के चिन्ह न पथ के मुझको मिलते,
मूर्ति किसी की तब हँस-हँस कर आगे आती,
मेरे पथ में हँसी किसी की फूल बिछाती;

प्यार मुझे कोई गीली आँखों से करती,
मेरे ही चिन्तन में कोई डूबी रहती;
आती आँगन में, बैठी रहती द्वारों पर,
पीली पड़ती ज्योत्स्ना-सी, आहें भर!
छाँह किसी की सदा दृगों में फिरती,
प्यार मुझे कोई गीली आँखों से करती;

घर के भीतर—बाहर जाती, हँसती—गाती,
दर्पण के आगे फूलों से केश सजाती;
स्वप्न देखती चिन्ता में निमग्न सी रहती,
शशि की मूर्ति, न जाने कैसी होगी लगती?
जब मानव बन, वह पृथ्वी पर रहने आती,
घर के बाहर-भीतर जाती, हँसती—गाती!

घुल जाऊँगा मैं ज्योत्स्ना में लघु जुगनू सा,
टपक पड़ूँगा ओस-विन्दु—सा किसी गगन का,
उषा-हास में मिल जाऊँगा मैं दीपक-सा,
पिघल पड़ूँगा शुचि चरणों में सावन घन-सा;
छिप जाऊँगा मैं सपना बन किसी नयन का,
टपक पड़ूँगा ओस विन्दु-सा किसी गगन का।

नयनों की वह प्रीति सभी अंगों को भाई,
नयनों की वह तन्मयता सब ने अपनाई;
डूबे प्राण उन्हीं मृदु ध्वनियों की गुञ्जन में,
डूबे अधर उन्हीं मृदु अधरों के चिन्तन में;
वाणी ने उनसे मिलने की रटन लगाई
नयनों की वह प्रीति सभी अंगों को भाई;

मैं चुपचाप सुना करता हूँ ध्वनि आशा की,
पीता हूँ शोभा अपनी ही अभिलाषा की!
देखा करता हूँ चुपचाप तटों पर आती,
उन लहरों को, जो सहसा हँस कर फिर जाती!
मुझे चाह है सलज प्रेम की मृदु भाषा की,
मैं चुपचाप सुना करता हूँ ध्वनि आशा की।

नाम तुम्हारा ले-ले कर आहें भरता हूँ,
मैं पृथ्वी पर सजल नयन लेकर फिरता हूँ,
खोया-सा बैठा रहता नदियों के तट पर,
सुनता लहरों के स्वर, तरु विपिनों के मर्मर,
राहों में पथिकों के दल देखा करता हूँ,
नाम तुम्हारा ले-ले कर आहें भरता हूँ!

सपना है, सच है, सपना है, पर सपने में,
जो सुख होता वह हो सकता क्या जगने में?
सचमुच है मरीचिका, पर कितनी सुन्दर है!
अमर नहीं है, पर कितने स्वर्गों की घर है?
इसे देख कर कौन रह सका है अपने में?
सपना है, सच है, सपना है, पर सपने में?

मेघों में ज्यों इन्द्र-धनुष की छवि मन मोहन,
इस विषाद-मय जीवन में, ऐसा ही यौवन!
शीत शिशिर में सूरज की किरणों-सा मोहक,
है इस यौवन की ज्वाला में तपने का सुख;
मेघों की लाली-सा क्षण भर ही का धन,
इन्द्र-धनुष की छाया-सा है, यह नव यौवन!

यौवन के पथ पर जा कर ऐसे ही मन को-
लुटा और आँखों में ले कर के रोदन को,
जो सुख होता धोखा खा कर पछताने में,
जो सुख होता फिर-फिर कर धोखा खाने में,
अमर वही सुख तो करता नश्वर जीवन को,
यौवन के पथ पर जा कर ऐसे ही मन को–

प्रेम देव हे! हे वसन्त के कोमल सहचर!
सुधा पिलाने वाले हे देवता मनोहर!
किया न तुम ने जिस को पीड़ित निज वाणों से,
उठी न रोदन की पुकार जिसके प्राणों से,
व्यर्थ हुआ उसका जीवन ही इस पृथ्वी पर,
प्रेम देव हे! हे वसन्त के कोमल सहचर!

दिन दे जाते मुझको अपनी करुण प्रभाएँ
मेरे चारों ओर विचरती हैं संध्याएँ,
थके पंख चलते हैं चारों ओर गगन में
चारों ओर जगत डूबा है अतल रुदन में,
सदा प्रतीक्षा ही करता मैं सजल दृगों से,
मेरे चारों ओर विचरती हैं संध्याएँ।

तुम प्रकाश हो, मुझ में दुख का तिमिर भरा है
तुम मधु की शोभा हो, मुझ में कुछ न हरा है,
तुम आशा की वाणी, मैं निराश जीवन हूँ
तुम हो छटा हँसी की, मैं नीरव रोदन हूँ,
तुम सुख हो, मेरे दुख का सागर गहरा है
मुझे मिलो हे, तुम में मधुर प्रकाश भरा है,

२

आह, एक दिन कितने निकट सरस वह मुख था !

आह, एक दिन इन प्राणों में कितना सुख था !

खुले द्वार थे स्वर्ग लोक के उसी राह पर—

चलता था मैं जो करती जीवन को सुंदर

क्रूर काल का चालक तब इतना न विमुख ?

आह, एक दिन इन प्राणों में कितना सुख था !

पतझर में भी लगता था, मधु ही हँसता-सा,
काँटों का वन भी, उर को पुलकित करता-सा,
सुधा-पान सी लगती थी, वह प्यास हृदय की,
स्वप्नों से थी, भरी-भरी गोदी भय की,
झरता पल्लव भी लगता था, हँस उगता-सा,
पतझर में भी लगता था, मधु ही हँसता-सा !

प्रिय लगते हैं काँटे भी, अपनी मधु रितु के,
प्रिय लगते हैं दीन वचन भी, अपने वैभव के,
प्रिय लगते हैं, अपनी वर्षा के तर्जन-गर्जन,
प्रिय अपने फूलों के आतप से पीड़ित तन,
प्रिय लगते आँसू, अपने शशि की पलकों के,
प्रिय लगते हैं काँटे भी, अपनी मधु-रितु के।

मरी आश मेरी, मृदु फूलों के लगने से ,
मरी कमलिनी मेरी, आँसू के झरने से ,
ज्यों ही दुख ने उस पर अपनी दृष्टि झुकाई ,
मेरी लाजवती हँसना भूली, मुरझाई ,
झरे पत्र मेरे नव पवनों के चलने से ,
मरी आश मेरी मृदु फूलों के लगने से ;

आएगा बसन्त, पर मैं न हरा अब हूँगा !
गरजेगा सावन, मैं उसके स्वर न सुनूँगा ,
होंगे इतने उत्सव, इन राहों के ऊपर ,
जाएँगी इतनी छाँहें, सुख से सज-धज कर ,
होंगे इतने प्रात, न मैं कुछ अब देखूँगा ,
आएगा सावन, मैं उसके स्वर न सुनूँगा !

हाय, चाँदनी अब न कभी मुझको भाएगी !
मेरे होंठों पर न हँसी, फिर कर आएगी ,
अब अपनी वातायन खोल गगन में उड़ती—
घनी घटा देखूंगा मैं न, मधुर स्वर करती ,
मेरे लिए न हाय, कहीं कोकिल गाएगी !
हाय, चाँदनी अब न कभी मुझ को भाएगी।

प्रेम नहीं वह, प्रेम नहीं वह, मेरे दुख का—
वह तो था उपचार, भाव था वह तो सुख का ,
करुणा थी वह, मेरे सिरहाने आ कर के—
बहलाया जिसने मुझको दो दिन, गा करके ;
भूल हुई, मैं सहज दया को ऐसे समझा !
प्रेम नहीं वह, प्रेम नहीं वह, मेरे दुख का—

दर्शन ही तो माँगा था, मेरी आँखों ने ?
एक स्पर्श ही तो माँगा था, इन बाँहों ने ?
तुम्हें लगा छाती से, सिर-आँखों पर धरना,
चाहा था मैंने, उर ही तो तुम को देना ?
हाय, सुखी ही होना तो चाहा था मैं ने ?
दर्शन ही तो माँगा था मेरी आँखों ने ?

विजय नहीं थी वह, थी हार बहुत ही भारी,
स्वर्ग नहीं था वह, था नरक महा दुख कारी,
सुख मैं जिसे समझता था, वह दारुण दुख था,
निश्छल-सा देखा मैं ने, उस छल का मुख था,
प्रकट हो गई अब यथार्थता उस की सारी;
विजय नहीं थी वह, थी हार बहुत ही भारी,

दूर-दूर तक फैली, मधु-रितु की हरियाली ,
खेल रही जिसमें, निश्चिन्त हवा मतवाली ;
धीरे-धीरे झूम रहे तरु, भरित स्वरों में ,
गीत विचरते, पत्रों के कंपित अधरों में ;
शोभा पी, अतृप्त डूबती, रवि की लाली ,
दूर-दूर तक फैली, मधु-रितु की हरियाली ।

मैं जाता हूँ, सपनों में, फिर उस प्रिय बन में ,
जहाँ मिली थी, मुझ को वह हँसती, बचपन में ,
जिन कुञ्जों में अञ्चल बिछा, विमल लोचन भर ,
पढ़ती थी वह, कोई कथा विरह की सुन्दर ;
उन कुञ्जों को देख व्यथा होती अब मन में ;
मैं जाता हूँ, सपनों में, फिर उस प्रिय बन में ।

उसी विपिन में खड़ी हुई वह वधू किसी की ,
देख रही चुपचाप सुवर्ण-मयी प्रतिमा-सी—
कुसुम-बनों से उठती, रवि की अंतिम किरणें ,
अब निष्प्रभ रवि-बिम्ब, लगा अंबर से गिरने ;
सुन पड़ती है दूर गीत-ध्वनि मधुर किसी की ;
उसी विपिन में खड़ी हुई वह बधू किसी की ।

हुए अपरिचित वे चिर-परिचित स्थान प्रणय के ,
होते अब कुछ और-और ही भाव हृदय के ;
टूटे वृक्ष हमारे, अब पृथ्वी के ऊपर ,
जाने किस की मधुर प्रीति के साक्षी सुन्दर !
खड़े हुए ये वृक्ष, देखते हमें सदय से ,
हुए अपरिचित वे चिर-परिचित स्थान प्रणय के !

मिले उसी तरु के नीचे मुझको रहने को ,
जिसमें आती हो कोकिल निशि-दिन रोने को ,
जहाँ सदा पुतली में भरी हुई रहती हो—
रस की बदली विरह-कथा को कहती जो ,
जहाँ बिछी दूर्वा हो, जी-भर कर रोने को ,
मिले उसी तरु के नीचे मुझको रहने को ।

मैंने देखा, शरद-सूर्य की किरणें निर्मल—
बिछी हुई थीं पृथ्वी पर, दूर्वा का अंचल—
भरा हुआ था, मूल्यहीन निर्मल हीरों से ;
मैं ने देखा सजल हवाएँ सरि-तीरों से—
उमड़ कर रही थीं पकते धानों को चंचल ;
मैं ने देखा, शरद-सूर्य की किरणें निर्मल ।

चला जा रहा था उत्तर की ओर मुदित हो ,
मैं अपने जीवन की लक्ष्मी से मिलने को ;
चला जा रहा था, उत्तर की ओर मनोहर–
शिखर खड़े हैं जहाँ, हिमालय के, पृथ्वी पर ,
गीत सुनाते हैं जिनको, किन्नर पुलकित हो ,
चला जा रहा था मैं उसी ओर प्रमुदित हो ।

मुझे दूर से दीख पड़ा शुचि भवन तुम्हारा ,
दीख पड़ी आँगन में मुझ को शुचि जल-धारा ;
दीख पड़े मुझको वे विटप, तुम्हारे घर को ,
घेर खड़े रहते हैं, पृथ्वी पर निःस्वर जो ;
दीख पड़ा मुझ को, मुख सरस तुम्हारा ;
दीख पड़ी मुझ को कल कल करती जल-धारा ।

द्वार खोल कर आँगन में जैसे तुम आई,
मुख पर आँचल लगा मधुर जैसे मुसकाई;
मृदुल हाथ रख कर के अपने निर्मल उर पर,
नाम लिया जैसे तुमने मेरा आहें भर,
और मुझे आँखों में आँसू पड़े दिखाई;
द्वार खोल कर जैसे आँगन में तुम आई।

मिला स्नेह मुझ को जब मधुर तुम्हारे मुख से,
बैठे रहे, हरे वृक्षों के नीचे हम सुख से;
बाँहो पर बाँहें धर, मेरे उर से लग कर,
हँसती रही चाँदनी-सी, तुम दिन भर,
छूट गया जैसे मैं जन्म-जन्म के दुख से,
मिला स्नेह मुझ को जब मधुर तुम्हारे मुख से।

दुखी हृदय की मधुर कल्पना, यों ही मन को—
भटकाती रहती सुख के बन में निर्मम हो,
दिखलाती मुझ को उस खोये सुख के सपने,
हो न सके जो, कभी इस जीवन के अपने,
नष्ट कर गये जो, मेरे सुन्दर जीवन को;
दुखी हृदय की मधुर कल्पना, यों ही मन को।

सजल कान्ति मेघों की, फिर छा गई गगन में,
यह कैसी मादकता, फिर आ गई पवन में!
यह कैसा उन्माद भरा, सरिता के उर में?
यह कैसा आह्लाद भरा, विहगों के स्वर में?
यह कैसा विषाद भर आया, दीन नयन में?
सजल कान्ति मेघों की, फिर छा गई गगन में!

बजती जीवन के द्वारों पर मृदु सहनाई ,
केश उड़ाती बहती सजल पवन पुरवाई ;
गाते खग पुलकित हो यौवन की डालों पर ,
बरस रहे अंबर से गरज-गरज कोमल स्वर ,
मेरी बधू आज उमड़ी वर्षा-सी आई ;
बजती जीवन के द्वारों पर मृदु सहनाई ,

रो-रो कर वह थकी, उसे पलकों पर धर कर—
धीरे-धीरे थाम, धरो अपने अधरों पर !
उसे बचाओ किरणों से, चिर तृषित पवन से ,
उसे बचाओ नीले नभ से, शून्य मरण से ,
धरो सयत्न छिपा उसको प्राणों के भीतर ,
रो-रो कर वह थकी, उसे पलकों पर धर कर !

किए रहो पलकों की छाया उसके ऊपर ,
बैठे रहो उसको नयनों में भर कर ,
उसके चारों ओर घूम कर करुण स्वरों में ,
भर कोई स्वर्गीय व्यथा अपने अधरों में ;
गाओ हे पीड़ित लहरों, सी टूट बिखर कर ;
किए रहो पलकों की छाया उस के ऊपर ।

वह सोती है दूर्वा पर मृदु सेज बिछा कर ,
उसे लिटा दो धीरे-धीरे कोमल गा कर ,
रह न सकेगी किसी तरह अब वह पृथ्वी पर ,
उड़ जाएगी ओस विन्दु-सी नभ के भीतर ,
चली जाएगी वह मेरी पलकों से उठ कर ;
उसे लिटा दो धीरे-धीरे कोमल गा कर ।

वह उड़ गई गगन में, मैं डूबा भू-तल में,
  वह बह गई पवन में, मैं टूटा पद-तल में,
वह भर गई, हँसी बन कर, शशि के अधरों पर,
  मैं सिमटा तम बन कर, किसी गुफा के भीतर,
चंचल वह बन गई, हुआ नीरव निश्चल मैं,
  वह उड़ गई गगन में, मैं टूटा पद-तल में,

डूब रहा है शशि, यह बादल टपक रहा है,
  मरु देशों में प्यासा निर्भर भटक रहा है,
मरता है यह हंस, करुण ध्वनि करता नभ में,
  मरती कली दीन भौंरों के व्याकुल रव में,
भरे कंठ में प्राणों का कण अटक रहा है;
  मरु देशों में प्यासा निर्भर भटक रहा है।

मेरे भावी जीवन को घन तम से भरता,
मेरे जीवन का नक्षत्र गगन से झरता!
धूम-मलीन विपिन से, विहगों-से उड़-उड़कर—
गीत गान जाते मेरे, अंबर को भर-भर;
शून्य मरण मुझ को विषाद से वेष्टित करता,
आज भाग्य मेरा, मेरी आँखों से झरता।

आज चाहता जी, सब दिन के बदले रोना!
धैर्य चाहता आज, विदा प्राणों से होना!
अब न भला लगता, ऐसे में आशा करना,
अब न भला लगता, इतने दुख में भी हँसना,
आज चाहते आँसू मेरे प्राण डुबोना,
आज चाहता जी सब दिन के बदले रोना!

कहाँ हाय ले जाऊँ, इस टूटे जीवन को ?
कहाँ छिपाऊँ, उर के इस उजड़े उपवन को ?
कैसे थामूं, आँखों के अकूल रोदन को ?
कैसे हाय बचाऊँ, इस पीड़ित यौवन को ?
किस प्रकार समझूं, इस निष्ठुर परिवर्तन को ?
कहाँ हाय ले जाऊँ, इस टूटे जीवन को ?

सच है, टूट गया जो उर, वह फिर न जुड़ेगा,
टूट गई जिस की पाँखें, वह फिर न उड़ेगा,
डूब गई जो तरणी, वह न चलेगी जल में,
उड़ी प्रभा जो, वह न मिलेगी फिर अंचल में,
खोया यौवन फिर न जगत में कहीं मिलेगा,
सच है, टूट गया जिसका उर, वह न बचेगा,

काँटों के किरीट से उसने मुझे सजाया ,
  काँटों से उस ने पथ मेरे लिए बनाया ,
अंधकार कर दिया हृदय में, दीप बुझाए ,
  आशा को मारा, स्वर, दुख से दीन बनाए ,
मुझे भाग्य ने जग में सब कुछ को तरसाया ,
  काँटों के किरीट से उसने मुझे सजाया ,

उतना सुख जो दे सकता था, हा उस ने ही—
  राह न फिर कोई छोड़ी अब जीवन रखने की !
मुझे उठाया पहिले बाँहों में मुसका कर ,
  मसला फिर पैरों के नीचे निर्दय बन कर !
आशा हा, अब क्या टूटे उर के जुड़ने की ?
  उतना सुख जो दे सकता था, हा उस ने ही !

अब रोने से कठिन हुआ है, मुझको हँसना ,
अब मरने से कठिन हुआ है, जीवत रहना ,
अंधकार लाता न शोक उतना जीवन में—
जितनी लातीं नव किरणें मेरे आँगन में ,
अब मरने से कठिन हुआ मुझको, कुछ कहना ,
अब मरने से कठिन हुआ है, जीवित रहना !

हटो दूर, मेरे प्राणों के पास न आओ ,
मैं हूँ दुखी, मुझे मत सुख के गीत सुनाओ ;
बहने दो मुझ को, अपनी आँखों के जल में ,
मुझे पड़ा रहने दो, अतल तिमिर के तल में ;
मैं क्या था, हो गया आज क्या, यह न बताओ ;
हटो दूर, मेरे प्राणों के पास न आओ ।

फैला सब के ऊपर वही सुनील गगन है ,
छूता सब को सदा वही मृदु मंद पवन है ;
चारों ओर वही नदियाँ हैं, वही सरोवर ,
वही वृक्ष हैं, पर भाग्यों में कितना अंतर ?
हँसता है कोई, कोई करता क्रन्दन है ,
फैला यद्यपि सब के ऊपर वही गगन है !

कोई और बिताता है, मेरे जीवन को ,
कोई और लुटाता, मेरे संचित धन को ,
कोई और कह रहा, मेरे वे सुख अपने ,
कोई और देखता, इन नयनों के सपने ,
प्यार और कोई करता, मेरी गुञ्जन को ,
कोई और बिताता है, मेरे जीवन को ।

किसी और के लिए, फूलते फूल विजन में ,
किसी और के लिए, उमड़ते मेघ गगन में !
किसी और के लिए, राग, रागिनियाँ गातीं ,
किसी और के लिए, चाँदनी हँसती आती !
किसी और के लिए, जागते दीप सदन में ,
किसी और के लिए, फूलते फूल विजन में !

नव वसंत में ही मेरे तरु को झरना था ?
मुझ को, इस उठते यौवन ही में, मरना था ?
सोये हैं सुख से जब, पृथ्वी के सब प्राणी ,
गहन निशा में जब, न कहीं भी कोई वाणी ,
मझे शून्य पथ पर तब यों आहें भरना था ?
हाय, मुझे; इस उठते यौवन ही में, मरना था ?

जिन से नव बसंत फूलों का हास छिपाता,
शशि न जिन्हें अपना पूरा सौंदर्य दिखाता,
घन विषाद में निशि-दिन डूबी रहने वाली,
विक्षिप्तों-सी, पृथ्वी भर में फिरने वाली,
ये मेरी आँखें हैं, जिन को कुछ न सुहाता,
जिन से नव वसंत अपना मृदु हास छिपाता।

क्षीण पदों से, अधरों के द्वारों तक आ कर,
करुण प्रभा से रोदन को पुलकित कर क्षण भर,
ओठों के नीचे दब कर, मर जाने वाली,
मलिन चाँदनी-सी दुख से, घिर आने वाली,
यह मेरी स्मिति है, थमतीजो अब रो-रो कर,
क्षीण पदों से अधरों के द्वारों तक आ कर।

अपने ही द्वारों के आगे, भिक्षुक बन कर,
खड़ा हुआ मैं, अपनी आँखों में आँसू भर,
कोई सुनता हाय! न मेरी, दो ही पल में—
मुझे अपरिचित बना दिया, नयनों के जल ने,
मुझे देख कोई न निकलता, अब हँस बाहर,
अपने ही द्वारों के आगे, भिक्षुक बन कर!

दीन-हीन छायाओं में, छिप-छिप कर चलता,
परिचित नयनों से अब डरते-डरते मिलता,
बुझा दीप-सा, अंधकार में डूबा रहता,
पतझड़ का बन-सा, सूनी साँसें भर उड़ता,
यह मेरा जीवन है, जिस को मरण न मिलता,
दीन-हीन छायाओं में, छिप-छिप कर चलता।

था अदृष्ट में इतना दुख, किस ने जाना था !
हँसी-खेल ही जीवन को, हम ने माना था ,
माना था स्थिर हम ने, इन चञ्चल लहरों को ,
माना था स्थिर, जीवन के इन सरस स्वरों को ,
इस विषाद का रूप, न अब तक पहिचाना था ,
हँसी खेल ही जीवन को, हम ने माना था

रो-रो कर भी मिटी न, हा, जीवन की आशा !
कभी न छाई, इन प्राणों में पूर्ण निराशा ;
मृत इच्छाओं में भी, सुलग रहा है जीवन ,
खुले अभी भी, सजल, प्रतीक्षाओं के लोचन
पथ में छाया है प्रकाश, अब भी धुँधला-सा
रो-रो कर भी मिटी न, हा, जीवन की आशा

आओ जीवन, पीड़ित तुम को, अब न करूँगा ,
आओ जीवन, सिर-आँखों पर तुम्हें धरूँगा ;
ले जाऊँगा मैं, तुमको मंगल के पथ पर ,
शुद्ध बनूंगा, शान्त बनूंगा, अनुगत हो कर ;
निज कृत्यों से, तुम्हें न अब, लज्जा दूंगा ,
आओ जीवन, पीड़ित तुम को, अब न करूँगा !

मैं न भला था, पर वह जीवन बीत गया है ,
तब से मैं ने कितना सीखा और सहा है ;
गर्व झर गया मेरा, अब आँखों के भीतर—
आया हूँ मैं रोदन के समुद्र को ले कर ,
मेरा जीवन, देख तुम्हारी ओर जिया है ;
मैं न भला था, पर वह जीवन बीत गया है !

मेरे पाप भुला दो करुणामय, निज मन से,
आओ देखो, दुख में डूबे हुए नयन ये;
यदि न अभी भी उर सुन्दर स्वच्छ हुआ हो,
तो, दुख में ही रहने देना कुछ दिन मुझ को;
हो यदि स्वच्छ, लगाना उर से और नयन से,
मेरे पाप भुला देना करुणामय, निज मन से,

मैं ने देखा, फिर मेरे सूने जीवन में—
आई एक किरण, मधु ले, अपनी चितवन में;
मैं ने देखा, प्राण भरे मेरे, सौरभ से,
मैं ने देखा, हृदय भरा मेरा, कलरव से;
मैं ने देखा, प्रात हुआ, मेरे आँगन में,
मैं ने देखी एक किरण, अपने जीवन में;

आँखों में रहता है, छाती में जलता है,
यह विषाद का बट, मेरे भीतर पलता है;
पाट दिया पत्रों से, उस ने, आज गगन को,
अब कैसे मुझ को, अपनी शशि के दर्शन हों ?
कैसे पाऊँ त्राण ? न कुछ भी वश चलता है !
यह विषाद का बट, मेरे भीतर पलता है !

हृदय, प्राण से जब चाहा था, तब न मिले तुम।
अब रूखा हो गया हृदय, सूखा जीवन-द्रुम ;
चाह नहीं है, तुम से भी मिलने की, मन में,
डूबा हूँ मैं, अगाध चिर सूनेपन में ;
परिचित काँटे हुए, अपरिचित स्नेह के कुसुम,
हृदय, प्राण से जब चाहा था, तब न मिले तुम ;

मैं ने सपनों में देखा, मैं अब न दुखी हूँ,
मैं जैसे पहले-सा ही हो गया सुखी हूँ;
मैं ने देखा झुक कर के मेरी शय्या पर—
बोली निठुर नियति भी जैसे, पीड़ित होकर—
अब मत रोओ, तुम्हें बहुत मैं रुला चुकी हूँ;
मैं ने सपनों में देखा, मैं अब न दुखी हूँ।

सुंदर थी पृथ्वी, मेरा मन भी सुंदर था,
जिसे चाहता था मैं, वह इन बाँहों पर था;
आज झुक गया हूँ, मैं टूट गया हूँ दुख से,
छूटा, सुख का साथ, निकलती आहें, मुख से;
मिला वही दुख मुझ को, जिस का मुझ को डर था,
सुंदर थी पृथ्वी, मेरा मन भी सुंदर था।

तुम प्रिय भाग्य, कहाँ से मुझे कहाँ ले आए ,
देखे थे जो दृश्य न, तुम ने वे दिखलाए !
देखा, अपनी ही आँखों से, अपना मरना ,
देखा, विपुल सिंधु का, अश्रु कणों से भरना ,
माँगे मैं ने फूल, वज्र तुम ने बरसाए ;
तुम प्रिय भाग्य, कहाँ से मुझे कहाँ ले आए !

क्षमा न कर सकते क्या, तुम मेरे पापों को ?
लौटा आज न सकते, क्या अपने शापों को ?
पड़ा हुआ हूँ घोर नरक में, मैं पशु बन कर ,
विकट अग्नि से जलता है धू-धू उर अंतर !
दूर न कर सकते क्या, तुम मेरे तापों को ?
लौटा आज न सकते, क्या अपने शापों को ?

हृदय, विपुल जग में एकाकी अब रहना है ,
आँखों में झरना है, उर में दुख सहना है ;
बीत गए सुख के दिन, बीती घड़ियाँ सुख की ,
अंधकार में लीन हुई हैं, हँसियाँ मुख की ;
शून्य मरण की ओर, शोक में अब बहना है ,
आँखों में झरना है, उर में दुख सहना है ।

इतने दिन हो गये, भाग्य पर फिरा न मेरा ,
इतने दिन हो गए, उठा न दुखों का घेरा ;
अधरों से उड़ कर, मुसकान न फिरने पाई ,
वह सुंदरता, फिर न विश्व में, पड़ी दिखाई !
मेरी आँखों में अब, है भर गया अँधेरा ,
इतने दिन हो गए, भाग्य पर फिरा न मेरा ।

मुझे शक्ति दो स्वामी, इतना दुख सहने की ,
मुझे शक्ति दो, इतना विष पी, बच रहने की ,
मुझे ज्ञात है, मुझे कभी अब, सुख न मिलेगा ,
मुझे ज्ञात है, मेरा मुरझा उर न खिलेगा ,
मुझे शक्ति दो, अब केवल, स्थिर हो दहने की ,
मुझे शक्ति दो, इतना विष पी, बच रहने की ।

विपुल सिन्धु जिसके, विषाद का पार नहीं है ,
जहाँ डूब फिर जीवन का उद्धार नहीं है ,
स्नेह नहीं, कल्पना नहीं है, हास नहीं है ,
जहाँ तिमिर में रवि-शशि का मृदु भास नहीं है ,
मुख में तुलसी, गंगा-जल की धार नहीं है ,
यह विषाद जिस की लहरों का पार नहीं है ।

सुख न हँसा सकता है, दुख न रुला सकता है,
उसे स्नेह जीवन में, अब न बुला सकता है,
दूर विश्व में, एक वृक्ष के नीचे निःस्वर--
पड़ा हुआ है, यह जीवन जीने से थक कर—
व्यथित दृष्टि वह, जिसे न रूप भुला सकता है,
यह दुख, जिसकी थाह न कोई पा सकता है।

३

सुख ने मुझको लहरों के ही बीच झुलाया ,
सुख ने मुझको हलका-सा ही राग सुनाया ,
दुख ले गया मुझे गहरे सागर के जल में ,
हँसते उज्ज्वल मोती, जहाँ तिमिर के तल में ,
दुख ने ही मुझको प्रकाश का देश दिखाया ,
सुख ने मुझको हलका-सा ही राग सुनाया ,

अहंभाव था जब तक, तब तक कितना दुख था ,
अंत नहीं है आज विश्व में मेरे सुख का ,
सब से नीचे लेटा हूँ, सब का स्नेही हूँ ,
गेह-हीन हो, हुआ आज सच्चा गेही हूँ ,
पथ में फिरता भिक्षुक मैं करुणा के मुख का ,
अंत नहीं है आज विश्व में मेरे सुख का !

मेरे मित्र दया कुछ मुझ पर कर जाते हैं ,
और शत्रु मुझ को सकष्ट लख मुसकाते हैं ,
पहले मैं मित्रों से स्नेह किया करता था ,
और शत्रुओं को नित शाप दिया करता था ,
किन्तु मुझे अब सभी एक से दिखलाते हैं ,
सब का हो कल्याण, मुझे अब सब भाते हैं ।

चाह नहीं है, अब मेरा जीवन शीतल है,
  द्वेष नहीं है, अब यह उर हो गया सरल है,
गई वासना, गया वासना-मय यौवन भी,
  मिटे मेघ, मिट गया आज उन का गर्जन भी,
मैं निर्बल हूँ, पर मुझ को ईश्वर का बल है,
  चाह नहीं है, अब मेरा जीवन शीतल है।

सुख बन कर आते हैं, सदा सुकृत ही अपने,
  दुख बन कर पीड़ित करते, दुष्कृत ही अपने,
परम सत्य है यह संसार, जहाँ माथे पर—
  गिरते हैं, अपने ही पाप, सदा गर्जन कर,
शुचि करते जीवन को अपने ही शुचि सपने,
  सुख बन कर आते हैं, सदा सुकृत ही अपने।

विष बल्ली बो, अमृत फलों की आश करूँ क्यों !
जो न भाग्य में है, मैं उस के लिए मरूँ क्यों ?
होना था ऐसा ही, इसीलिए हुआ ऐसा,
हो न सका वैसा, रुचि कर था मुझ को जैसा,
चला गया वह, मैं आँसू से आँख भरूँ क्यों ?
जो न भाग्य में है, मैं उस के लिए मरूँ क्यों ?

करता हूँ स्वीकार प्रभो, मैं न्याय तुम्हारा,
करता हूँ, स्वीकार बेड़ियाँ यह, यह कारा;
आज हो गया, शनैः शनैः वह दुख भी धीमा,
एक दिवस, जिस की पीड़ा थी तीक्ष्ण असीमा;
हुआ भला ही मेरा, इन कष्टों के द्वारा,
करता हूँ, स्वीकार प्रभो, मैं न्याय तुम्हारा,

कभी सोचता हूँ मैं, व्यर्थ हुआ जीवन है,
और कभी, सुख से भर जाता मेरा मन है;
जटिल पहेली यह न समझने में कुछ आई,
किस ने मृत्यु बनाई, किस ने व्यथा बनाई ?
और बनाई किसने स्मिति की शीत किरण है ?
कभी सोचता हूं मैं, व्यर्थ हुआ जीवन है।

तृष्णा छोड़, घूमता हूँ मैं, जीवन-वन में,
सुनता हूँ, ईश्वर का नाम, पवित्र पवन में,
चाह नहीं है, असफलता का शोक नहीं है,
मैं आनन्द-मग्न हूँ, सुख से पूर्ण, मही है,
उड़ता है मन, शरद मेघ-सा, शुभ्र गगन में,
तृष्णा छोड़, घूमता हूँ मैं, जीवन-वन में,

हँसी बुलाई जिस ने, श्वेत पंख फैलाए—
    उस के पास हँसी आई, उस ने सुख पाए,
और किया जिस ने निशि-दिन शोकों का चिंतन,
    उस के पास शोक आए, आया कटु रोदन,
पाए सुख-दुख जिस ने जो तन्मय हो चाहे,
    हँसी बुलाई जिस ने, श्वेत पंख फैलाए,

मैं न निकालूँगा, अब निराश वाणी मुख से,
    मैं न डरूँगा, अब विपरीत भाग्य के दुख से,
प्रभो, सीख लेता जो करना भक्ति तुम्हारी,
    उसे सदा आशा देती है, शक्ति तुम्हारी,
रहता है वह सदा तुम्हारे जग में सुख से,
    वह न कभी डरता, विपरीत भाग्य के दुख से,

निरुत्साह होना, इस जग में पाप महा है,
सदा कर्म करना, लड़ना ही श्रेय यहाँ है,
यहाँ अमृत है आशा, विष है विषम निराशा,
देती महा सफलता है, साहस की भाषा,
लड़ो, वीर का सदा सहायक, भाग्य रहा है,
निरुत्साह होना, इस जग में पाप महा है,

दीन न समझो, मन अपने को, दीन न समझो,
तुम हो पूर्ण काम, अपने को हीन न समझो,
करो न चिंता, वह है प्रभु को कोपित करती,
धीर धरो, धीरता सभी संकट है हरती,
यत्न करो, जीवन को भाग्याधीन न समझो,
दीन न समझो, मन अपने को, दीन न समझो।

हृदय, देह पानी ही तो तुम ने चाही थी,
हृदय, देह पानी ही तो तुम को भाई थी,
नारी को तुम ने था, अपने उर पर चाहा,
पूजा की उस की, उस को बहु भाँति सराहा,
विष को अमृत समझने में, क्या चतुराई थी?
सोचो तो, क्या तुम ने व्यथा नहीं चाही थी?

मिली वासना नहीं, मिले छाती पर व्रण ये,
तुम ने सोचा, व्यर्थ हुए, यौवन के क्षण ये;
तुम रोए, तुम ने अपने को दुखिया माना,
दुख में, प्रभु की इच्छा को, न कभी पहिचाना;
रोते-रोते, क्षीण कर दिये, स्वर जीवन के,
तुम ने सोचा, व्यर्थ हुए, जीवन के क्षण ये।

खुली आँख जब, ईश्वर के चरणों में आए ,
रूप और आनंद-ज्ञान, तब तुम ने पाए ;
देखी लौकिक रूपों की व्यर्थता, हृदय में ,
देखा उस को, जो रहता स्थिर, वस्तु प्रलय में ;
आँसू भर दृग में, गुण तुम ने उस के गाए ;
खुली आँख जब, ईश्वर के चरणों में आए ।

इतने जन्मों के पश्चात् शरण में आया ,
प्रभो, दूर रह कर मैं ने कितना दुख पाया !
नास्तिक कहलाने में, जब होता गौरव था ,
पाप-पुण्य का, क्या विचार हो सकता, तब था ?
पूजा पाप, पुण्य मैं ने सदैव ठुकराया ,
इतने जन्मों के पश्चात् शरण में आया ।

यहीं रहूँगा, चरण-शरण में अब जीवन भर ,
पाप मिटाऊँगा, आँसू की धार बहा कर ,
अगणित पाप, एक दिन, सह जब मिट जाएँगे ,
मेरे प्राण, शांति से तुम में, मिल पाएँगे ,
मिट जाऊँगा मैं, सागर के बीच ज्यों लहर ,
यहीं रहूँगा, चरण-शरण में अब जीवन भर ।

सभी दिशाएँ मित्र, शत्रु है आज न कोई ,
पाप नहीं, प्राणों में मेरे लाज न कोई ;
कोई क्या सोचता, न कुछ चिन्ता है इस की ,
वस्तु नहीं ऐसी, कुछ मुझे चाह हो जिस की ;
वसन गेरुआ, इस से अच्छा साज न कोई ,
सभी दिशाएँ मित्र, शत्रु है आज न कोई ।

बीत गई वर्षा, अब स्वच्छ विमुक्त गगन है,
सिर के ऊपर, अब न वज्र करता गर्जन है;
छोड़ दिया, अभ्र घिरी दिशाओं ने नित रोना,
उज्ज्वल खिलता, धुली हुई पृथ्वी का कोना;
बीत गया अब, उमड़ी सरिता का यौवन है,
सिर के ऊपर, अब न वज्र करता गर्जन है।

लौट शरद की रितु आई, फिर इस जीवन में,
हँसे चन्द्र-तारे, मेघों से मुक्त गगन में,
स्वच्छ हुए जल, सरिताओं के, स्वच्छ सरोवर,
भरी मोतियों से, दूर्वा की पलकें सुन्दर,
फैल गई, नभ की स्मिति, पृथ्वी के कण-कण में,
लौट शरद की रितु आई, फिर इस जीवन में।

चले गये बादल, अब विरल हो गये तारे,
नील गगन में उठे शिखर हिमगिरि के प्यारे ;
स्वच्छ पवन हो गई, हुई निर्मल सरिताएँ,
धानों से हो गईं पीत, सब ओर दिशाएँ,
शरद देख, लौटे प्रमोद पृथ्वी के सारे,
चले गये बादल, अब विरल हो गये तारे।

काँस हँस पड़े, शरद-माधुरी बन में छाई,
रजनी-गंधा की सुषमा, उर में न समाई ;
उड़े पवन में उज्ज्वल राजहंस, कल भाषी,
गिरि-वन में कूजे चकोर, शशि-रूप विलासी,
स्वच्छ गगन में, हँस-हँसकर, शशि बदनी छाई,
काँस हँस पड़े, शरद-माधुरी बन में छाई।

चारों ओर, दूर तक फैले, बन कासों के,
आते ज्वार, धरा पर ज्यों ज्योत्स्ना के हासों के,
हुए असुंदर भी सुंदर, मिल कर सुंदर से,
हुआ तिमिर भी उज्ज्वल, लग कर शशि के उर से;
मुँदे नयन, स्वर उठते केवल उछ्वासों के,
चारों ओर, दूर तक फैले, बन कासों के।

भीतर-बाहर सभी ओर उज्ज्वलता छाई,
सभी ओर देता विशुद्ध आनंद दिखाई,
पूर्ण शान्ति, जिस को न भंग करते विग्रह-स्वर,
मैं जैसे हो गया आज आनंद से अमर,
मैं ने जैसे आज मुक्ति जीवन में पाई,
मेरे भीतर बाहर शान्त ज्योति है छाई।

प्यारे गीत, बहुत दिन रहे साथ, हम जग में,
रोते-गाते हुए बढ़े, हम जीवन-मग में;
आज समाप्ति हुई पथ की, अब मुझे विदा दे-
लौटो तुम, जाने दो दूर मुझे जीवन से,
रह अभिन्न, होता हूँ तुम से आज विलग मैं,
मेरे गीत, बहुत दिन रहे साथ, हम जग में।

तुम इस पथ से लौट, पुनः पृथ्वी में जाओ,
तुम जग के अधरों पर, मेरे स्वर ले जाओ,
मैं जाता हूँ ईश्वर की प्रशान्ति पाने को,
तुम लौटो पृथ्वी पर, सुख पूर्वक गाने को,
तुम गाओ, जग को रहने के योग्य बनाओ,
तुम सब के अधरों पर, मेरे स्वर ले जाओ।

पापी को तुम पुनः, पुण्य पथ पर लौटाना,
तुम नास्तिक को दृढ़ आस्तिक, दृढ़ भक्त बनाना,
देना दुखिया को धीरज, निराश को आशा,
करना वितरित, पृथ्वी पर, सुख की शुचि भाषा,
पतनोन्मुख जीवन को, तुम दे बाँह, बचाना,
तुम नास्तिक को दृढ़ आस्तिक, दृढ़ भक्त बनाना।

करुणा वह फैलाना, उर को स्वच्छ करे जो,
प्रणय-गीत वह गाना, उर के कलुष हरे जो;
पापी को जो पुनः, पुण्य-पथ पर लौटावे,
जो जीवन दे, जीवन से अनुराग जगावे,
चिर निराश उर में आशा का दीप धरे जो,
प्रणय-गीत वह गाना, उर के कलुष हरे जो।

युग-युग तक, सुख पूर्वक तुम, संसृति में रहना ,
तुम सब से, मेरे सुख-दुख की वार्ता, कहना ,
ऊँच-नीच सब के द्वारों पर जा कर गाना ,
सब को एक समझना, तुम सब को अपनाना ,
निन्दा-स्तुति सब की, तुम बीत-राग हो सहना ,
मेरे अमर रूप, युग-युग तक, जग में रहना ।

शुभ हों पंथ, दूर हो जाएँ, सब बाधाएँ ,
अशुभ शब्द कानों में, नहीं कहीं से आएँ ,
स्वागत करें अर्घ्य लेकर सब, जग में तेरा ,
तू आए बन कर जगती में स्वर्ण-सबेरा ,
तू सब को भाए, जग में सब तुझ को भाएँ ,
शुभ हों पंथ, दूर. हो जाएँ, सब बाधाएँ ।

शान्ति-शान्ति, सब के जीवन में, शान्ति व्याप्त हो ,
शान्ति-शान्ति, सब को जीवन में, शान्ति प्राप्त हो ,
दुखी न कोई, रहे कहीं, पृथ्वी के ऊपर ,
विपुल शान्ति से, हों प्रपूर्ण, सब के उर-अन्तर ,
विपुल शान्ति में, गीत-कथा मेरी समाप्त हो ,
शान्ति-शान्ति, सब को जीवन में, शान्ति प्राप्त हो !!

नंदिनी

अकारादि क्रम से

पदों की सूची

	पहली पंक्ति	भाग	पृष्ठ
	अ		
१	अपने ही द्वारों के आगे भिक्षुक बन कर	२	४०
२	अब रोने से कठिन हुआ है मुझको हँसना	२	३६
३	अलकें बिखराए आँसू में नयन डुबाए	१	४
४	अहंभाव था जब तक तब तक कितना दुख था	३	५२
	आ		
५	आएगा बसंत पर मैं न हरा अब हूँगा	२	२१
६	आओ जीवन पीड़ित तुमको अब न करूँगा	२	४२
७	आँखों में रहता है छाती में जलता है	२	४४
८	आज अतिथि यदि मेरे यौवन का आ जाता	१	१
९	आज चाहता जी सब दिन के बदले रोना	३३	२
१०	आशा की डोरी में जीवन झूल रहा है	१	११

	पहली पंक्ति	भाग	पृष्ठ
११	आह एक दिन कितने निकट सरस वह सुख था	२	१९
	इ		
१२	इतने जन्मों के पश्चात शरण में आया	३	५९
१३	इतने दिन हो गए भाग्य पर फिरा न मेरा	२	४७
१४	इस जीवन में कभी न सुख की छाया आई	१	९
	उ		
१५	उतना सुख जो दे सकता था हा उसने ही	२	३५
१६	उसी विपिन में खड़ी हुई वह वधू किसी की	२	२५
	क		
१७	कभी सोचता हूँ मैं व्यर्थ हुआ जीवन है	३	५५
१८	करता हूँ स्वीकार प्रभो मैं न्याय तुम्हारा	३	५४
१९	करुणा वह फैलाना उर को स्वच्छ करे जो	३	६५
२०	कहाँ मिलेगी मर कर इतनी सुन्दर काया	१	७
२१	कहाँ हाय लेजाऊँ इस टूटे जीवन को	२	३४
२२	काँटों के किरीट से उसने मुझे सजाया	२	३५
२३	काँस हँस पड़े शरद माधुरी बन में छाई	३	६२
२४	किए रहो पलकों की छाया उसके ऊपर	२	३१
२५	किसी और के लिए फूलते फूल विजन में	२	३८
२६	कोई और बिताता है मेरे जीवन को	२	३७

	पहली पंक्ति	भाग	पृष्ठ
	ख		
२७	खुली आँख जब ईश्वर के चरणों में आए'	३	५९
	घ		
२८	घर के बाहर भीतर जाती हँसती गाती	१	१२
२९	घुल जाऊँगा मैं ज्योत्स्ना में लघु जुगनू—सा	१	१३
	च		
३०	चला जा रहा था उत्तर की ओर मुदित हो	२	२७
३१	चले गये बादल अब विरल हो गए तारे	३	६२
३२	चारों ओर दूर तक फैले बन काँसों के	३	६३
३३	चाह नहीं है अब मेरा जीवन शीतल है	३	५३
	ज		
३४	जन्म जन्म से खोज रहा है उसको जीवन	१	५
३५	जिनसे नव बसन्त फूलों का हास छिपाता	२	३९
	ड		
३६	डूब रहा है शशि यह बादल टपक रहा है	२	३२
३७	तृष्णा छोड़ घूमता हूँ मैं जीवन-बन में	३	५५
३८	तुम इस पथ से लौट पुनः पृथ्वी में जाओ	३	६४
३९	तुम प्रकाश हो मुझ में दुख का तिमिर भरा है	१	१७
४०	तुम प्रिय भाग्य कहाँ से मुझे कहाँ ले आए	२	४६

	पहली पंक्ति	भाग	पृष्ठ
	थ		
४१	था अदृष्ट में इतना दुख किसने जाना था	२	४१
	द		
४२	दर्शन ही वो माँगा था मेरी आँखों ने	२	५३
४३	द्वार खोल कर आँगन में जैसे तुम आई	२	२८
४४	दिन दे जाते मुझको अपनी करुण प्रभाएँ	१	१७
४५	दीन न समझो मन अपने को दीन न समझो	३	५७
४६	दीन हीन छायाओं में छिप छिप कर चलता	२	४०
४७	दुखी हृदय की मधुर कल्पना यों ही मन को	२	२९
४८	दूर दूर तक फैली मधु रितु की हरियाली	२	२४
	न		
४९	नदी चली जाएगी यह न कहीं ठहरेगी	१	७
५०	नयनों की वह प्रीति सभी अंगों को भाई	१	१३
५१	नव वसन्त में ही मेरे तरु को झरना था	२	३८
५२	नाम तुम्हारा ले ले कर आहें भरता हूँ	२	१४
५३	निरुत्साह होना इस जग में पाप महा है	३	५७
	प		
५४	पतझड़ में भी लगता था मधु ही हँसता-सा	२	२०
५५	पापी को तुम पुन: पुण्य-पथ पर लौटाना	३	६५

	पहली पंक्ति	भाग	पृष्ठ
५६	प्यार मुझे कोई गीली आँखों से करती	१	१२
५७	प्यारे गीत, बहुत दिन रहे साथ हम जग में	३	६४
५८	प्रिय लगते हैं काँटे भी अपनी मधु रितु के	२	२०
५९	प्रेम देव हे, हे वसन्त के कोमल सहचर	१	१६
६०	प्रेम नहीं वह प्रेम नहीं वह मेरे दुख का	२	२२
	फ		
६१	फैला सब के ऊपर वही सुनील गगन है	२	३७
	ब		
६२	बजती जीवन के द्वारों पर मृदु सहनाई	२	३०
६३	बीत गई वर्षा अब स्वच्छ विमुक्त गगन है	३	६१
	भ		
६४	भीतर बाहर सभी ओर उज्ज्वलता छाई	३	६३
	म		
६५	मधुर स्वरों में मुझे नाम प्रिय का जपने दो	१	४
६६	मर कर भी ऐसे दिन फिर न कभी आवेंगे	१	८
६७	मरी आश मेरी मृदु फूलों के लगने से	२	२१
६८	मिला स्नेह मुझ को जब मधुर तुम्हारे मुख से	२	२८
६९	मिली वासना नहीं, मिले छाती पर व्रण ये	३	५८
७०	मिले उसी तरु के नीचे मुझ को रहने को	२	२६

	पहली पंक्ति	भाग	पृष्ठ
७१	मुझे दूर से दीख पड़ा शुचि भवन तुम्हारा	२	२७
७२	मुझे प्रेम की अमर पुरी में अब रहने दो	१	३
७३	मुझे शक्ति दो स्वामी इतना दुख सहने की	२	४८
७४	मेघों में ज्यों इन्द्र धनुष की छबि मन मोहन	१	१५
७५	मेरा उर सौरभ को विखरा कर रो रो कर	१	५
७६	मेरी बाँहें सरिताओं सी व्याकुल होकर	१	८
७७	मेरे उर से उमड़ रही गीतों की धारा	१	६
७८	मेरे काँटे मिल न सकेंगे क्या कुसुमों से	१	६
७९	मेरे पथ में हँसी किसी की फूल बिछाती	१	११
८०	मेरे पाप भुला दो करुणामय निज मन से	२	४३
८१	मेरे पास आज इतना धन है देने को	१	१०
८२	मेरे भावी जीवन को घन तम से भरता	२	३३
८३	मेरे मित्र दया कुछ मुझ पर कर जाते हैं	३	५२
८४	मैं चुपचाप सुना करता हूँ ध्वनि आशा की	१	१४
८५	मैं जाता हूँ सपनों में फिर उस प्रिय वन में	२	२४
८६	मैं न निकालूंगा अब निराश वाणी मुख से	३	५६
८७	मैं न भला था पर वह जीवन बीत गया है	२	४२
८८	मैंने देखा फिर मेरे सूने जीवन में	२	४३
८९	मैंने देखा शरद सूर्य की किरणें निर्मल	२	२६

	पहली पंक्ति	भाग	पृष्ठ
९०	मैंने सपनों में देखा मैं अब न दुखी हूँ	२	४५
	य		
९१	यहीं रहूँगा चरण-शरण में अब जीवन भर	३	६०
९२	युग-युग तक सुख पूर्वक तुम संसृति में रहना	३	६६
९३	यौवन के पथ पर जाकर ऐसे ही मन को	१	१६
	र		
९४	रो रो कर भी मिटी न हा जीवन की आशा	२	४१
९५	रो रो कर वह थकी उसे पलकों पर धर कर	२	३०
	ल		
९६	लौट शरद की रितु आई फिर इस जीवन में	३	६१
	व		
९७	वह उड़ गई गगन में, मैं डूबा भूतल में	२	३२
९८	वह सोती है दूर्वा पर मृदु सेज बिछाकर	२	३१
९९	विजय नहीं थी वह थी हार बहुत ही भारी	२	२३
१००	विपुल सिन्धु जिसके विषाद का पार नहीं है	२	४८
१०१	विष बल्ली बो अमृत फलों की चाह करूँ क्यों	३	५४
	स		
१०२	सच है टूट गया जो उर वह फिर न जुड़ेगा	२	३४
१०३	सजल कान्ति मेघों की फिर छा गई गगन में	२	२९
१०४	सपना है ! सच है, सपना है, पर सपने	१	१५

	पहली पंक्ति	भाग	पृष्ठ
१०५	सभी दिशाएँ मित्र, शत्रु है आज न कोई	३	६०
१०६	सुख न हँसा सकता है दुख न रुला सकता है	२	४९
१०७	सुख ने मुझको लहरों के ही बीच झुलाया	३	५१
१०८	सुख बन कर आते हैं सदा सुकृत ही अपने	३	५३
१०९	सुन्दर थी पृथ्वी मेरा मन भी सुन्दर था	२	४५
	श		
११०	शान्ति शान्ति सब के जीवन में शान्ति व्याप्त हो	३	६७
१११	शुभ हो पंथ दूर हो जाएँ सब बाधाएँ	३	६६
	ह		
११२	हटो दूर मेरे प्राणों के पास न आओ	२	३६
११३	हाय आज के फूल न कल तक रह पायेंगे	१	१०
११४	हाय चाँदनी अब न कहीं मुझको भायेगी	२	२२
११५	हृदय देह पानी ही तो तुमने चाही थी	३	५८
११६	हृदय प्राण से जब चाहा था तब न मिले तुम	२	४४
११८	हृदय, विपुल जग में एकाकी अब रहना है	२	४७
११८	हुए अपरिचित वे चिर परिचित स्थान प्रणय के	२	२५
११९	हँसी बुलाई जिसने, श्वेत पंख फैलाए	३	५६
	क्ष		
१२०	क्षमा न कर सकते क्या तुम मेरे पापों को	८४	२
१२१	क्षीण पदों से अधरों के द्वारों तक आकर	७२	२

कृपया

कहाँ ?	पृष्ट	पंक्ति	संशोधन
प्रवचन		७—	हृदय में लहरा रही थीं
		१३—	और न मृत्यु से डर
चन्द्रकुँवर बर्त्वाल	९ —	२० —	हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ गीति
	९ —	२१—	में स्थान दिया
	१० —	१ —	अग्रवाल,
	१० —	६ —	पाञ्च भाद्र पद
	११—	१५—	नंदिनी के प्रकाशित होते समय,
नंदिनी			कवि की ये पंक्तियाँ आज
	५ -	१२ —	कहता है सदा
	११—	१० —	अंधकार में
	१२ —	४ —	सूनी आहें भर
	१२—	५—	मेरे फिरती
	१५ —	११—	लाली-सा यह
	१६—	४—	जीवन को सुन्दर
	१६ -	५—	विमुख था
	२० -	४—	भरी-भरी-सी
	२० —	७—	दीन बच्चन अपने

२०—	८—	लगते अपनी
२०—	११—	अपनी शशि
२६—	४—	विरह कथा को जो कहती हो
२७—	११—	तुम्हारा प्यारा
२८—	१०—	चाँदनी-सी निर्मल
२९—	४—	हो न सके जो इस जीवन के फिर भी अपने
३१—	२—	बैठे रहो धरे
३१—	५—	गाओ हे पीड़ित लहरों-सी,
३३—	३—	धूम्र मलीन
३५—	८—	राह न कोई छोड़ी
३६—	२—	जीवित रहना
३८—	११—	मुझे शून्य
३८—	१२—	इस उठते यौवन में मरना था
४३—	३—	अभी भी यह उर
४४—	१०—	मैं इस अगाध
६०—	५—	खो जाऊँगा शान्त लहर सा—मैं सागर-भर
६३—	२—	धरा पर ज्योत्स्ना के हासों के

पदों की सूची

६९—	१५—	२-३३
७२—	५—	२-२३
७२—		४४ (दिन दे जाते)
७६—	२०—	२-४६
७६—	२१—	२-३९

नंदिनी की सरलता, सच्चापन और शान्त भाव का वातावरण पढ़ने वाले के मनको आच्छादित कर लेता है।

प्रयाग, २२ अप्रैल १९४८ ई०। हरिश्चन्द्र आइ०, सी० एस०

Each stanza is like a gem, chiselled and polished, a unit in itself........

No other poet perpaps has caught the Spirit of the Sub Himalayan panorma as beautifully as Bartwal. The mellow Sunshine, and the Suffused lights, the colorful, everchanging cloudscape and the rugged grandeur of the naked hills, are all reflected in this poem of singular beauty and power.

Sun. 18th Jan. 1948. National Herald

नंदिनी पढ़ने से श्यैले और कलापी की याद आती है।

हरिलाल मूल शंकर मलानी

चन्द्रकुँवर के रूप में हिन्दी-संसार ने अपना सबसे बड़ा गीति-काव्य रचयिता पाया और खो दिया।

डा० वासुदेव शरण

प्राप्ति स्थान—शंभु प्रसाद बहुगुणा, आइ० टी० कालेज लखनऊ

सामान्य संस्करण मूल्य १।)

विशेष संस्करण मूल्य २)